CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भट्टाकवि हर्ष कृत

प्रियदर्शिका

अनुवादक

श्री गंगाधर इन्दूरकर साहित्यरत्न, साहित्य शास्त्री

797

450

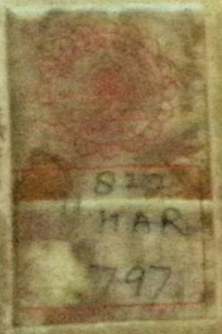

२००३

हिन्दी साहित्य सम्मेलन

प्रयाग

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रथम संस्करण १०००

मूल्य ॥=)

प्रकाशकीय

संस्कृत के श्रेष्ठ ग्रन्थों तथा पुराणों के हिन्दी अनुवाद की सम्मेलन का ध्यान बहुत पहले से ही रहा है। इसके लिए पिछले वर्षों से एक स्थायी अनुवादक भी रखे गए हैं, जिन्होंने मत्स्य तथा वायुपुराण का अनुवाद समाप्त कर दिया है। सुप्रसिद्ध माघ के शिशुपालवध तथा मम्मट के काव्यप्रकाश का अनुवाद भी सम्मे द्वारा प्रकाशित हो चुका है। संस्कृत के श्रेष्ठ नाटकों के अनुवाद की योजना भी सम्मेलन की दृष्टि में थी। श्री गंगाधर इन्दूरकर द्वा अनूदित संस्कृत के सुप्रसिद्ध नाटककार हर्ष कृत रत्नावली, प्रियदर्शि और नागानन्द को सम्मेलन उसी दृष्टि से प्रकाशित कर रहा आशा है, हिन्दी पाठकों को यह पसन्द आएँगे।

इन अनुवादों की पाण्डुलिपियों को डा० उदयनारायण तिव एम० ए० डी० लिट्० तथा पं० क्षेत्रेशचन्द्र चट्टोपाध्याय, एम० ए० देखने का कष्ट कर पसन्द किया है, एतदर्थ हम उनका आभा मानते हैं।

श्रीमान् बड़ौदा नरेश स्वर्गीय महाराजा सयाजीराव गायकवाड़ ने बंबई के सम्मेलन में स्वयं उपस्थित होकर जो पाँच सहस्र रुपये की सहायता सम्मेलन को प्रदान की थी, उसी सहायता से सम्मेलन इस 'सुलभ-साहित्य-माला' के प्रकाशन का कार्य कर रहा है अनेक सुन्दर और मनोरम ग्रन्थ-पुष्पों का ग्रंथन हो चुका है और हमें आशा है कि उनके समान ही श्रीहर्ष के नाटकों के इन अनुवादों का भी हिंदी जगत् स्वागत करेगा।

साहित्य मन्त्री
हिन्दी साहित्य सम्मेलन
प्रयाग

सौर मार्गशीर्ष २०, २००३

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

1/58

022/HMS

797

प्रियदर्शिका

—०::०—

प्रस्तावना

—:❀:—

गौरी—जिसके नेत्र (यज्ञ के) धूएँ से व्याकुल हो रहे हैं, और जिसके नेत्र (शिव मस्तक पर विराजमान) चन्द्र की किरणों से पुनः आल्हादित (भी) हो रहे हैं, उत्सुक होकर जो वर (शंकर) को देख रही है और (पुरोहित के रूप में उपस्थित) ब्रह्मा जी से लजाकर जिसका मुँह विनम्र हो गया हैं, जो चरण नख रूपी दर्पण में दिखाई दे रहे थे, गंगा को धारण किये हुए शङ्कर पर, जो ईर्ष्या कर रही है, तथा पाणि ग्रहण के समय जो (पतिकर) स्पर्श के कारण रोमांचित हो रही है, आपके कल्याण के लिये हो ॥१॥

(रावण के द्वारा) कैलास पर्वत ऊपर उठाया जाने पर तथा (यह क्या हुआ इस)-कौतूहल से भरे शिवगणों के (इधर उधर) चलने पर, (डरकर) कुमार कार्तिकेय माता (पार्वती) की गोद में बैठने पर, क्रोध से सर्प के देखने पर, पैरों को गड़ाकर खड़ी हुई जिसकी शरीर दुखी हो रही थी, ऐसे रावण पाताल के (भी) नीचे तथा इन सब कारणों से (शंकर के) क्रुद्ध होने पर भी जाने पर अत्यन्त भय के कारण उमा द्वारा गाढ़ आलिंगित (अतःएव) सन्तुष्ट शिव हमारी रक्षा करें ॥२॥

नान्दी के पश्चात्

सूत्रधार—(परिक्रमाकर) आज वसन्तोत्सव के समय विभिन्न देशों से आये हुए तथा राजा हर्ष देव के चरण कमलों की सेवाकर अपनी उपजीविका चलाने वाले राज समूह के द्वारा मैं कहा गया हूँ। जैसे "हमारे स्वामी श्री हर्ष देवने अपूर्व कथानक तथा रचना से अलंकृत 'प्रियदर्शिका' नामक नाटिका (की रचना) की है (और) यह हम लोगों ने कानों से सुना है। किन्तु (अब तक) उसका प्रयोग (अभिनय)

Bhawanji Vidya Bhawan Sri Sankaracharya Mahavidyalaya Mahaskri

958

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

नहीं देखा। अतः सब लोगों के हृदय को आनन्द देने वाले उसी राजा के सम्मान के लिये तथा हम लोगों पर अनुग्रह करने के लिये आप (उसका) यथाविधि अभिनय करें।" अतः नेपथ्य की रचना कर (राजाओं की) अभिलाषा पूर्ण करूँ। (चारों ओर देखकर) निश्चय है कि दर्शकों के मन खींच लिये गये हैं। क्योंकि—

श्रीहर्ष (एक) निपुण कवि है, यह परिषद् भी गुणग्राहिणी है। संसार में वत्सराज का चरित्र मनोहर है और (इधर) हमलोग अभिनय कला में निपुण हैं। यहाँ इनमें से एक एक वस्तु भी इच्छित फल को देने वाली है। फिर मेरे सौभाग्य से गुणों का यह सभी समुदाय (यहाँ) समुपस्थित हुआ है ॥३॥

(नेपथ्य की ओर देखकर) अरे! प्रस्तावना को आरम्भ करते ही मेरे अभिप्राय को समझकर (अतएव) अङ्गाधिपति दृढ़वर्मा के कंचुकी का वेष धारण कर (यह) मेरा भाई इधर ही आ रहा है। मैं भी दूसरा वेष धारण करता हूँ।

[प्रस्थान।]

[प्रस्तावना समाप्त।]

विष्कम्भक।

[कंचुकी की प्रवेश।]

कंचुकी—(शोक तथा श्रम का अभिनय करता हुआ लम्बी सांस लेकर) कष्ट है। कष्ट है।

"राजापर आपत्तियाँ, बान्धवों का वियोग दुःख, स्वदेश का परित्याग, तथा दुर्गम के कष्ट"—ये सब मैं, अपनी इस लम्बी आयु का जो खराब और निरर्थक है, फल चख रहा हूँ ॥४॥

(शोक तथा आश्चर्य से) "मेरे (कलिंग के) द्वारा माँगी जाने पर भी इसने अपनी कन्या का विवाह वत्सराज से किया" इस द्वेष के कारण (तथा) "प्रद्योत की क़ैद से वत्सराज (अभी) नहीं लौट रहे हैं" इस छिद्र को जानने के कारण (उस) दुष्ट कलिंग के द्वारा राजा दृढ़वर्मा की जिसकी तीनों शक्तियाँ अनिवार्य थीं, तथा जो रघु दिलीप तथा नल के समान था, ऐसी दुर्दशा की जायगी, इस सत्य तथा प्रत्यक्ष पर भी मैं

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

विश्वास नहीं करता हूँ। भाग्य इस प्रकार हम पर कैसे अत्यन्त निष्ठुर हुआ है? "किसी प्रकार इसका (राजपुत्री का) विवाह वत्सराज से कर स्वामी को उऋण बनाऊँगा" यह सोचकर मैंने प्रलयकाल के समान भयंकर युद्ध की (उस) लूट मार से (राजपुत्री को) बचाकर महाराज दृढ़वर्मा के मित्र अरण्य निवासी राजा विन्ध्यकेतु के घर में छिपा रखा। मैं जब स्नान के लिये अगस्त्य तीर्थ को जो बहुत दूर भी नहीं था, गया था, कुछ लोग आए और उन्होंने विन्ध्य केतु को मारकर राक्षसों की तरह वह स्थान जला कर निर्जन बना दिया। ज्ञात नहीं, वह राजपुत्री (इस समय) किस दशा में है? मैंने यह स्थान (भी) खूब अच्छी तरह छान डाला पता नहीं (उसे) वे ही दस्यु ले गये अथवा (उसे) जला दिये! (अब) मैं अभागा क्या करूँ? (सोचकर) अरे मैंने ऐसा सुना है—"कारागृह से भागे हुए वत्सराज प्रद्योत की कन्या को चुराकर कौशाम्बी आ गये हैं।" क्या वहीं जाऊँ। (लम्बी साँस लेकर अपनी दशा दखता हुआ) राजपुत्री के बिना वहाँ जाकर क्या कहूँगा? अरे! विन्ध्यकेतु ने आज मुझे कहा था—"डरो मत! महाराज दृढ़वर्मा जीवित हैं। वे तीक्ष्ण प्रहारों से जर्जरित होकर (शत्रु के कारागृह में निबद्ध है।" अब (मैं) स्वामी के ही निकट जाकर (उनकी) चरण सेवा कर अपना शेष जीवन सफल बनाऊँगा। (परिक्रमा कर तथा ऊपर की ओर देखकर) अरे! यह शरद की धूप अत्यन्त तीव्र है। इस प्रकार अनेक दुखों से संतप्त हुए मुझे भी तीक्ष्ण प्रतीत हो रही है।

*मेघ के बन्धन (आवरण) से मुक्त, कन्या (राशि) के ग्रहण (अतिक्रमण) से दूसरी तुला नामक (राशि) को पहुँच कर (मध्यान्ह में) अपने तेज को प्राप्त करने वाला यह सूर्य वत्सराज की तरह, जो कठोर बन्धन (कारागृह) से मुक्त हो गये हैं जो कन्या (वासवदत्ता) के ग्रहण से दूसरी ही तुला (कोटि) को पाकर अपने धाम (कौशाम्बी) को पहुँचा चुके हैं, तप रहा है ॥५॥

[प्रस्थान।]

[विष्कम्भक समाप्त।]

---

* मूल में राजा वत्सराज तथा सूर्य के लिये समान श्लेषमय विशेषण प्रयुक्त हैं।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रथम अंक

[राजा तथा विदूषक का प्रवेश]

राजा—(मैंने) सेवकों की (अपने प्रति) दृढ़ निष्ठा जान ली। मन्त्रियों के बुद्धि की भी परीक्षा हो चुकी। मित्रों को भी देख लिया। प्रजा का अधिक अनुराग ज्ञात हो गया। रण में साहस करने का (मेरा) व्यसन पूरा हो गया। स्त्री रत्न (वासवदत्ता) की (भी) प्राप्ति हुई। निष्काम धर्माचरण के द्वारा मैंने बन्धन (कारागृह) से क्या नहीं पाया ॥६॥

विदूषक—(क्रोध से) मित्र ! तुम दासी के पुत्र उसी दुष्ट बंधन (कारागृह) की कैसे प्रशंसा कर रहे हो। उसे इस समय भूल जाओ। (प्रद्योत के कारागृह में) अभ्यास न होने से बजती हुई लोह शृंखला के द्वारा पैरों को लड़खड़ाते हुए एकान्त होने के कारण कठिन हृदय सन्ताप को प्रकट करने वाले, क्रोधित होकर आँखें फाड़कर देखने वाले, तथा दुखी होकर अपनी बड़ी भुजाओं से जमीन पीटते हुए तुम नवीन पकड़े हुए गजपति की तरह जो बजती हुई लोह शृंखला के बन्धन से लड़खड़ा रहा है, अकेला होने के कारण जिसके हृदय का सन्ताप और भी कठिन हो रहा है। क्रोध से जिसकी आँखें फट रही हैं जो अपनी बड़ी सूँड़ से जमीन पीट रहा है रात में भी अनिद्रा के सुख (दुख) का अनुभव कर चुके हो।

राजा—वसन्तक ! (तुम) दुर्जन हो। देखो।

(तुमने) घने अन्धकार से युक्त कारागृह को देखा (किन्तु उस वासवदत्ता) के मुखचन्द्र की कान्ति नहीं देखी। बेड़ियों की झन्कार से तुम्हें पीड़ा हुई। किन्तु (वासवदत्ता) की मधुर वाणी नहीं सुनी। आज तुम्हारे मन में कारागृह के क्रूर रक्षक हैं (वर्तमान) किन्तु उसके स्निग्ध कटाक्ष नहीं है। तुम कारागृह के दोष देखते हो किन्तु प्रद्योतपुत्री (वासवदत्ता) के गुण नहीं देखते हो ॥७॥

विदूषक—(गर्व से) यदि बन्धन (कारागृह) सुख का बन्धन होता है तो तुमने दृढ़वर्मा को कैद कर लिया इसलिये कलिंग पर क्यों क्रोध कर रहे हो ?

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

राजा—(व्यंग्य से हँसकर) धिक् मूर्ख ! सब कोई वत्सराज नहीं है, जो इस प्रकार वासवदत्ता को पाकर कारागृह से भाग जायँगे। यह बात रहने दो। विन्ध्यकेतु को जीतने के लिये विजयसेन को भेजे बहुत दिन हुए। उसके पास से आज तक कोई आया भी नहीं। अमात्य रुमण्वान् को बुलाओ उसके साथ कुछ बातें करना चाहता हूँ।

[प्रवेश कर]

प्रतिहारी—महाराज की विजय हो। यह विजय सेन तथा अमात्य रुमण्वान् द्वार पर उपस्थित हैं।

राजा—उन दोनों को शीघ्र प्रवेश कराओ।

प्रतिहारी—जो महाराज की आज्ञा।

[प्रस्थान]

[रुमण्वान् तथा विजयसेन का प्रवेश]

रुमण्वान्—(विचार कर)

(राजा के आदेश से क्षण में ही (राजकार्य के लिये) निकले हुए सेवक अपराध किये बिना ही अपराधी की तरह प्रायः सशंकित होकर राजगृह में प्रवेश करते हैं।) ॥८॥

(निकट जाकर) महाराज की विजय हो।

राजा—(आसन को दिखाकर) रुमण्वान् ! यहाँ बैठो।

रुमण्वान्—(स्मित करता हुआ बैठकर) यह विन्ध्यकेतु को जीत कर (आया हुआ) विजयसेन प्रणाम कर रहा है।

[विजयसेन प्रणाम करता है।]

राजा—(उसे, सादर आलिंगन कर) आप कुशल से तो हैं ?

विजयसेन—आज स्वामी की कृपा से।

राजा—विजयसेन ! बैठो।

[विजयसेन बैठता है।]

राजा—विजयसेन ! विन्ध्यकेतु का समाचार कहो।

विजयसेन—देव ! दूसरा क्या कहूँगा। जैसा स्वामी के कुपित होने पर (होना चाहिये वैसा ही है।)

राजा—फिर भी विस्तार से सुनना चाहता हूँ।

विजयसेन—देव ! सुनिये। यहाँ से महाराज के चरणों की आज्ञा ग्रहण कर आज्ञा परिपालक हाथी, घोड़े तथा पैदल सैन्य के साथ

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

हम लोग अत्यन्त दीर्घ मार्ग को भी तीन दिनों में ही अतिक्रमण कर प्रभात के समय अचानक विन्ध्यकेतु पर टूट पड़े।

राजा—उसके पश्चात्—

विजयसेन—उसके पश्चात् हमारी सेना के घोर कल कल (शब्द) को सुनकर जगाए हुए सिंह की तरह वह विन्ध्यकेतु भी विन्ध्य पर्वत की गुफाओं से निकल कर, सैन्य तथा वाहन की भी प्रतीक्षा न करता हुआ पास वाले कतिपय लोगों की सहायता लेकर तथा सहसा अपने नाम का उद्घोष* करता हुआ हम से युद्ध करने के लिये प्रस्तुत हो गया।

राजा—(रुमण्वान् की ओर देखकर स्मित करता हुआ) विन्ध्य केतु ने अच्छा किया। उसके अनन्तर—

विजयसेन—उसके अनन्तर "यह है" "यहाँ है" इस प्रकार (कहने से) द्विगुण उत्साह तथा मात्सर्य से भरे हुए हमलोगों के द्वारा किये गये महान् युद्ध के कारण सहायक से रहित (उस) अकेले ही (विन्ध्यकेतु) ने, युद्ध के कारण जिसका बल तथा क्रोध का वेग बढ़ गया था, अत्यन्त भीषण युद्ध किया।

राजा—साधु ! विन्ध्यकेतु ! साधु।

विजयसेन—देव ! क्या वर्णन किया जाय। संक्षेपतः कह रहा हूँ।

पदाति (रथ के नीचे) होकर प्रथम (हमारे) पैदल (सैन्य) को वक्षःस्थल को चक्की में पीस कर, बाण की वर्षा से घुड़सवारों को त्रस्त मृगसमूह की तरह दिशाओं में दूर (भगा) ले जाकर (अतःएव) सर्वत्र (लोगों के द्वारा) परित्यक्त किये गये शस्त्रों की ढेर करने वाला विन्ध्यकेतु उक्त कार्य के अनन्तर शीघ्र कोष से खड्ग खींचकर हाथियों की सूंड़ें ऐसी काटने लगा जैसे (वह) कदली बन को काटने का खेल कर रहा हो ॥६॥

इस प्रकार (हमारे) विविध (पैदल, घोड़े हाथी) सैन्य को अकेले ही व्याकुल करता हुआ, खड्ग की किरणों से व्याप्त स्कंध वाला, शस्त्र के

---

*प्राचीन काल में प्रथा थी कि युद्ध करते समय भाटों के द्वारा अथवा स्वयं अपना नाम शत्रु को बताते थे।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रहारों से जंघा तथा वक्षःस्थल पर सैकड़ों घावों से युक्त, (अतःएव) थका हुआ विन्ध्यकेतु युद्ध में बड़ी देर में मारा गया ॥२०॥

राजा—रुमण्वान् ! सत्पुरुषों के लिये उचित मार्ग का अनुसरण करते हुए विन्ध्यकेतु के मरण के कारण हमलोग सचमुच लज्जित हो गये हैं।

रुमण्वान्—देव ! गुणमात्र का पक्षपात करने वाले आप ऐसे (सज्जनों) को शत्रु के गुण भी प्रीति उत्पन्न करते हैं।

राजा—विजयसेन ! विन्ध्यकेतु को क्या कोई अपत्य है ? जिसे मैं इस सन्तोष का फल दिखाऊँ ?

विजयसेन—देव ! यह भी निवेदन करता हूँ। इस प्रकार बन्धन तथा परिवार के साथ विन्ध्यकेतु के मारे जाने पर स्त्रियों ने (सती होकर) उसका अनुसरण करने पर, विन्ध्य (पर्वत) के शिखरों पर प्रजा के भाग जाने पर तथा वह स्थान शून्य हो जाने पर "हा तात ! हा तात ! इस प्रकार करुण प्रलाप करती हुई, विन्ध्यकेतु के घर में (प्राप्त हुई) (एक) कुलीन कन्या को उस (विन्ध्यकेतु) की (ही) कन्या समझ कर हम लोग ले आये हैं। (वह) द्वार पर उपस्थित है। उसका (अब) आप ही निर्णय करें।

राजा—यशोधरे ! जाओ। तुम्हीं इसे वासवदत्ता को सौंप दो। देवी से कहना, "बहिन समझकर तुम्हीं इसका पालन पोषण करना। इसे कुलीन कन्याओं के उचित गीत-नृत्य तथा वाद्य आदि सब सिखा देना। जब (यह) विवाह के योग्य हो जाय तब मुझे स्मरण कराना।"

प्रतीहारी—जो महाराज की आज्ञा।

नेपथ्य में वैतालिक (कहता है)

इस समय तुम्हारी स्नान भूमि (स्नानागार) स्वच्छन्द स्नान करने के लिये मंगल उपकरण तथा उबटन को तैयार करने वाली अन्तःपुर की वारांगना स्तनों के कारण जिसके परिश्रम से आच्छादन वस्त्र खिसक कर जो (स्तन) निर्मल तथा पीतवर्ण के हो रहे हैं, (अतएव) दूसरे सुवर्ण को घड़ों से अलंकृत सी दिखाई दे रही है ॥२१॥

राजा—अरे ! क्या भगवान् सूर्य मस्तक पर आ गये हैं। इस

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

समय—

मछलियों के तड़फड़ाने से इस दीर्घिका का जल सूर्य के ताप से खौलता सा प्रतीत हो रहा है। नृत्य करने से शिथिल हुए भी पक्षभार को यह मोर (ताप से बचने के लिये, छत्राकार फैला रहा है। आल वाल (वृक्षों का थाला) के जल से ललचाया हुआ यह हरिण का बालक (जल-भ्रम से) वृक्षों के छाया चक्र के निकट जाता है। और इस समय मधुकर गजके कपोल छोड़कर उसके कान में (धूप से बचने के लिये) घुस रहा है ॥१२॥

रुमण्वान्! उठो। भीतर चलकर अन्दर ही आवश्यक कर्म समाप्त कर तथा विजयसेन का सत्कार कर (उसे) कलिंग का विनाश करने के लिये भेजें।

[सब का प्रस्थान।]

[प्रथम अंक समाप्त।]

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

द्वितीय अंक

[विदूषक का प्रवेश।]

विदूषक—इन्दीवीर के द्वारा मैं कहा गया हूँ कि आज उपवास तथा (व्रत) नियम को करने वाली देवी वासवदत्ता ❀स्वस्ति वायन (देने के) निमित्त (ब्राह्मणों को) बुलाना चाहती हैं। (मैं भी) धारागृहोद्यान की दीर्घिका में स्नान कर महारानी के निकट जाकर कुक्कुटवाद (निरर्थक प्रलाप) करूँगा। अन्यथा कैसे हम ऐसे ब्राह्मण राजकुल में (भला) दान पा सकते हैं? (नेपथ्य की ओर देखकर) क्या यह प्रियमित्र आज महारानी के विरह से दुखित (चित्त) को बहलाने के लिये धारागृहोद्यान की ओर ही जा रहा है। अतः मित्र के साथ ही जाकर मैं उल्लिखित कार्य करूँगा।

[उत्कंठित राजा का प्रवेश।]

राजा—अत्यन्त दुर्बल, मांगलिक अलंकार मात्र धारण की हुई, धीरे धीरे कष्ट से बोलने वाली, पाण्डु वर्ण के मुख से प्रातःकालीन चन्द्रमा की कान्ति को तिरस्कृत करने वाली नियम उपवास आदि को करने से दुखी (इस प्रकार) मानों प्रथमानुराग की दशा से युक्त उस मेरी प्रिया को देखने के लिये मेरा चित्त उत्कंठित हो रहा है ॥१॥

विदूषक—(निकट जाकर) आपका कल्याण हो। आपकी वृद्धि हो।

राजा—(देखकर) वसन्तक! फूले से क्यों दिखाई दे रहे हो?

विदूषक—महारानी ब्राह्मण की पूजा करने वाली हैं।

राजा—यदि ऐसा है तो उससे क्या?

विदूषक—(गर्व से) मेरे ऐसा ब्राह्मण! चतुर्वेद, पंचम वेद षष्ठ वेद (जानने वाले) हजारों ब्राह्मणों से भरे हुए राजकुल में मैं महारानी से मैं ही प्रथम स्वस्तिवायन प्राप्त करूँगा।

❀ एक प्रकार का दान, जो सौभाग्य वृद्धि के हेतु दिया जाता है।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

राजा—(व्यंग्य से हँसकर) वेदों की संख्या से ही (अपना) ब्राह्मणत्व बता दिया। आओ महा ब्राह्मण! धारागृहोद्यान की ओर ही चलें।

विदूषक—जो महाराज की आज्ञा।

राजा—आगे चलो।

विदूषक—आओ चलें! (परिक्रमाकर तथा देखकर) मित्र। देखो। निरन्तर गिरते हुए विभिन्न पुष्पों से शिलातल के पृष्ठ भाग जहाँ सुकुमार प्रतीत हो रहे हैं, जहाँ परिमल में लिपटे हुए भ्रमर-भार के द्वारा बकुल तथा मालती लता के जाल दूर रहे हैं, मानों कमल की गन्ध ग्रहण कर उद्दाम (बहने वाली) हवा के द्वारा जहाँ बन्धूक (दोपहरिया का फूल) की कलियाँ खोल दी गयी हैं तथा जहाँ सूर्य का प्रकाश सघन तमाल वृक्षों से छिपा दिया गया है, ऐसे धारोगृहोद्यान की शोभा को देखो।

राजा—मित्र! (तुमने) ठीक कहा। यहाँ—

भूमि, शेफालिकाओं की फुनगियों से गिरे हुए छोटे छोटे प्रवालों से आच्छादित सी शोभित हो रही है। सप्तच्छद (वृक्ष) की सुगंध इस समय (यहाँ) गजमद की सुगंध का मोह उत्पन्न करती है। और उत्फुल्ल कमलों से गिरे हुए अधिक पराग पुंज से जिनका शरीर पीतवर्ण का सा हो गया है ऐसे ये मधुकर मानों मद्यपान से उन्मत्त हुए कुछ अस्पष्ट गा से रहे हैं ॥२॥

विदूषक—मित्र! यह भी देखो। यह निरंतर गिरते हुए पुष्प समूह से युक्त सप्तपर्ण का वृक्ष आज (पुष्पों के गिरने से) वर्षा के पश्चात् पत्तों के बीच से गिरते हुए जल विन्दुओं से युक्त सा दिखाई दे रहा है।

राजा—मित्र! तुमने उत्प्रेक्षा ठीक की। (और भी) बहुत कुछ वर्षाकाल की तरह है। क्योंकि

शिरीष कुसुम की शोभा को (अधिक कोमलता के कारण) चुराने वाले (अतएव) उसी समय मरकत मणि के चूर्ण से सद्यः धोई सी हरी घास के मैदानों के द्वारा कोमल तथा फर्श के समान दिखाई देने वाली यह भूमि फुनगियों से गिरे हुए बन्धूक पुष्प समूह के

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कारण आज भी सैकड़ों ❀इन्द्रगोपकों से अच्छादित सी दिखाई दे रही है ॥३॥

[चेटी का प्रवेश]

चेटी—मैं महारानी वासवदत्ता द्वारा आशा दी गई हूँ "ए इन्दीवीरके ! आज मुझे महर्षि अगस्त्य को अर्घ्य देना है। तुम जाओ। शेफालिका के फूलों की माला लेकर शीघ्र आओ यह आरण्यका भी धारागृहोद्यान की दीर्घिका से फूले हुए कमलों को (जब तक) वे अस्ताभिलाषी सूर्य के द्वारा संकुचित नहीं किये जाते हैं तब तक चुनकर ले आए।" यह तपस्विनी उस दीर्घिका को नहीं जानती है। (अतः) इसे लेकर जाऊँगी। आरण्यके ! इधर आओ।

[आरण्यका का प्रवेश।]

आरण्यका—(आँखों में आँसू भरकर उद्वेग से, स्वगत) उस प्रकार के (श्रेष्ठ) वंश में उत्पन्न हुई तथा दूसरों को आज्ञा करने वाली मुझे आज दूसरे की आज्ञा का पालन करना पड़ता है। भाग्य के लिये कुछ भी कठिन नहीं है ! अथवा यह मेरा ही दोष है, जिसने जानकर भी आत्मघात नहीं किया। अब क्या करूँगी। मैंने अत्यन्त कठिन काम (दूसरों की सेवा करने का) सोचा है। यह भी अच्छा हुआ अपने श्रेष्ठ वंश को प्रकाशित करके मैंने अपने को छोटा (दूसरों से तिरस्कृत) नहीं किया ? क्या उपाय है ? जो कुछ (मुझ से) कहा गया है, करूँगी।

चेटी—आरण्यके ! इधर आओ।

आरण्यका—यह आ रही हूँ। (श्रम का अभिनय करती हुई) ए ! अब भी दीर्घिका कितनी दूर है ?

चेटी—यह शेफालिका की झाड़ी के पीछे ! आओ। उतरें।

[दोनों उतरने का अभिनय करती हैं।]

राजा—मित्र ! क्या और भी कुछ सोच रहे हो ? मैं कहता हूँ कि बहुत कुछ वर्षा काल की तरह है। "शिरीष कुसुम को" आदि फिर कहता है।)

विदूषक—(क्रोध से) तुम तो यह वह देखते हुए अपने विरह दुखी चित्र को बहला रहे हो। किन्तु मुझ ब्राह्मण को स्वस्ति वायन (का

❀बरसाती लाल कीड़ा।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

समय बीत रहा है। अतः मैं शीघ्र दीर्घिका में नहाकर महारानी के निकट जाऊँगा।

राजा—मूर्ख ! हमलोग दीर्घिका के तो पार चले आये। विभिन्न इन्द्रियों के द्वारा होने वाले अत्यन्त सुख का अनुभव करते हुए भी तुम यह नहीं देख रहे हो ? देखो—

स्त्रियों के नूपुर की तरह शब्दायमान यह हंसों का शब्द कानों को सुख दे रहा है। तटवर्ती वृक्षों के रन्ध्री से दिखाई देने वाली प्रासाद-पंक्तियाँ नेत्रों को सुख दे रही हैं। अधिक परागों से युक्त कमलों की सुगन्ध से घ्राणेन्द्रिय (नासिका) को सुख हो रहा है। और यह जल संस्पर्श से शीतल वायु-अवयवों को आल्हादित कर रही है ॥४॥

आओ ! दीर्घिका के तट पर चलें। (परिक्रमाकर तथा तथा देख कर) मित्र ! देखो। देखो।

*उत्फुल्ल कमलों की शोभा को तिरस्कृत करने वाली तथा स्वच्छ उद्यान देवता की दृष्टि की तरह यह दीर्घिका, जो उत्फुल्ल कमलों की शोभा से मनोहर है तथा स्वच्छ (जल वाली) है, मुझे दर्शन मात्र से सुख दे रही है ॥५॥

विदूषक—(कुतूहत से) मित्र ! देखो। देखो। *पुष्प पराग की सुगंध से (आकृष्ट हुए) मधुकरों से बनी हुई वेणी वाली, विद्रुम लता के लाल पल्लव रूपी हाथों वाली स्वच्छ शरीर वाली, कोमल लता रूपी भुजाओं से युक्त तथा प्रत्यक्ष चलने वाली उद्यान देवता की तरह सचमुच यह कौन स्त्री, जिसकी वेणी पुष्प पराग की सुगंध से मधुकरों द्वारा व्याप्त हुई है, जिसके हाथों की उंगलियाँ विद्रुमलता पल्लवों की तरह लाल हैं, जिसकी शरीर चमक रही है, जिसकी भुजाएँ कोमल लताओं की तरह हैं, दिखाई दे रही हैं।

राजा—(कौतुक से देखकर) मित्र ! यह (अपनी) अत्यन्त स्वरूप

---

*दृष्टी तथा दीर्घिका के लिये मूल में समान श्लेषमय विशेषण प्रयुक्त हैं।

*स्त्री तथा उद्यान देवता के लिये मूल में श्लेषमय विशेषण प्रयुक्त हैं।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

शोभा से विभिन्न कल्पनाओं को कराने वाली यह कौन है। सचमुच मैं भी नहीं समझ रहा हूँ ! देखो—

पाताल से मृत्यु लोक को देखने के लिये क्या यह नाग कन्या आई है किन्तु यह असत्य है। (मैंने पाताल) देखा ही है। उसमें ऐसी (सुन्दर स्त्री) कहाँ है। यदि मूर्तिमान् कौमुदी चन्द्रिका हो तो उसका दिन में दर्शन नहीं होता। फिर यह कौन है जो हाथ में लिये हुए कमल के कारण लक्ष्मी की तरह दिखाई दे रही है ॥६॥

विदूषक—(ध्यान से देखकर) यह महारानी की परिचारिका इन्दीवीरका हैं। झाड़ी में छिपकर देखें।

[दोनों झाड़ी में छिपते हैं।]

चेटी—(कमलिनी के पत्ते को तोड़ने का अभिनय करती हुई) आरण्यके ! तुम कमलों को चुन लो। मैं भी इस कमलिनी के पत्ते में शेफालिका के फूल चुनकर महारानी के पास जाऊँगी।

राजा—मित्र ! संभाषण प्रतीत हो रहा है। सावधान होकर सुनें। कदाचित् यहीं से स्पष्ट हो जायगा।

[चेटी जाने का अभिनय करती है।]

आरण्यका—इन्दीवीरके ! मैं तुम्हारे बिना यहाँ नहीं रह सकती।

चेटी—(मुँह बनाकर हँसती हुई) आज मैंने महारानी की जैसी बातें सुनी उनसे (प्रतीत होता है कि) तुम्हें अब मेरे बिना चिरकाल तक रहना होगा।

आरण्यका—(खेद से) महारानी की बातें क्या थीं ?

चेटी—यह थी। उस समय "मैं महाराज के द्वारा कही गयी थी कि "जब यह विन्ध्यकेतु की कन्या विवाह योग्य हो जायगी तब मुझे स्मरण दिलाना।" अतः इस समय महाराज को स्मरण कराऊँगी जिससे वे (इसके लिये) वर (खोजने) की चिन्ता से व्याकुल होंगे।

राजा—(हर्ष से) क्या यह वही विन्ध्यकेतु की कन्या है ? (पछताता हुआ) हम लोग चिरकाल तक ठगे गये। मित्र। यह कन्या है जिसे देखना निर्दोष है। अब हम लोग निःशंक देखें।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

आरण्यका—(क्रोध से कानों में उँगली डालकर) तुम जाओ। असंबद्ध प्रलाप करने वाली तुमसे (मुझे) कुछ काम नहीं है।

चेटी हटकर फूल चुनने का अभिनय करती है।

राजा—अहो! (इस) निर्भयता से (इसने) अपनी कुलीनता स्पष्ट प्रकट कर दी। मित्र! वह धन्य है जो इसके अंगस्पर्श के सुख का पत्र होगा।

[आरण्यका कमल चुनने का अभिनय करती है।]

विदूषक—मित्र! देखो। देखो। आश्चर्य है। आश्चर्य है। यह (कमलों को) चुनती हुई जल में हिलते हुए करपल्लवों की प्रभा से कमल वन को कान्तिहीन करती हुई (दिखाई दे रही) है।

राजा—मित्र! सचमुच यहीं है। देखो।

नेत्रों से (चन्द्रके) अमृत विन्दुओं की निरन्तर वर्षा की तरह प्रेमवर्षा करने वाली, स्तनों के आवरण वस्त्र के खिसकने से अनुपम दर्शनीय शोभा को प्राप्त होने वाली तथा चन्द्रमा की तरह शरीर वाली इस (स्त्री) के कर (किरण) को प्राप्त हुए ये कमल सहसा संकुचित नहीं होते हैं यहीं आश्चर्य हैं ॥७॥

आरण्यका—(भ्रमरों के आक्रमण का अभिनय करती हुई) हा धिक्! हा धिक्। ये दूसरे कमलिनी को छोड़कर कमल वन आते हुए दुष्ट मधुकर अत्यन्त पीड़ा देते हुए मुझे तंग कर रहे हैं। उत्तरीय (चादर! से मुँह ढाँककर, भय) ऐ इन्दीवीरके! मुझे बचाओ। मुझे बचाओ। ये दुष्ट मधुकर मुझे तंग कर रहे हैं।

विदूषक—मित्र! तुम्हारे मनोरथ सफल हो गये। जब तक यह गर्भदासी की पुत्री नहीं आ रही है तभी तक तुम चुपचाप (उसके) निकट जाओ। यह भी जल में ध्वनि सुनाई देनेवाला पैरों का आहट से इन्दीवीरका ही आ रही हैं यह समझ कर तुम्हारा ही अवलंब (आलिंगन) करेगी।

राजा—साधु! मित्र। साधु। (तुम्हारा) उपदेश समयानुसार है। (आरण्यका के निकट जाता है।)

आरण्यका—(पैरों की आहट का अभिनय करती हुई) इन्दीवीरके! शीघ्र आओ। शीघ्र आओ। दुष्ट मधुकरों से व्याकुल हो गयी हूँ। (राजा को पकड़ती है।)

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(राजा गले लगाता है। आरण्यका मुख से उत्तरीय हटाकर राजा को न देखती हुई भ्रमरों के देखने का अभिनय करती है।)

राजा—(अपने उत्तरीय से भ्रमरों को हटाता हुआ)

अरी भीरु ! खेद मत करो। ये पराग कण में ललचाये हुए भ्रमर तुम्हारे मुख कमल पर गिर रहे हैं। यदि त्रास के कारण चंचल नेत्रवाली (तुम इन्हें) हटाओगी तो भी ये कमलवन की लीला स्वरूप तुम्हें कैसे छोड़ सकते हैं ॥८॥

आरण्यका—(राजा को देखकर साध्वस, भय तथा अनुराग) का अभिनय करती हुई। क्या यह इन्दीवीरका नहीं है ? (भय से राजा को छोड़कर दूर हटती हुई) इन्दीवीरके ! शीघ्र आओ। शीघ्र आओ। मुझे बचाओ।

विदूषक—संपूर्ण पृथ्वी को बचाने में समर्थ वत्सराज द्वारा बचाई जाती हुई (तुम) चेटी इन्दीवीरका को पुकार रही हो।

[राजा "अरी भीरु।" आदि फिर कहता है।]

आरण्यका—(राजा को देखकर ईर्ष्या तथा लज्जा से, स्वगत) यह वही महाराज हैं जिनको मैं पिता के द्वारा विवाह के लिये समर्पित की गई थी। पिता जी की इच्छा उचित थी। (व्याकुलता का अभिनय करती है।)

चेटी—दुष्ट मधुकरों द्वारा आरण्यका तंग की गई। निकट जाकर (मैं) सान्त्वना करूँगी। आरण्यके ! डरो मत। यह आ गई।

विदूषक—हटो ! हटो ! यह इन्दीवीरका आ गई। यह इस समाचार को महाराना से निवेदन कर देगी। (उँगली दिखाकर) इस कदलीगृह में प्रवेश कर क्षण भर रुकें।

[दोनों कदलीगृह में प्रवेश करते हैं।]

चेटी—(निकट जाकर (आरण्यके) गालों पर हाथ फेरती हुई) अरी आरण्यके ! कमल के समान तुम्हारे मुख का ही दोष है कि मधुकर इस प्रकार अपराध करते हैं। (हाथ पकड़कर) आओ चलें। दिन बीत गया।

[जाने का अभिनय करती है।]

आरण्यका—(कदलीगृह की ओर देखकर) ऐ इन्दीवीरके !

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

जल अत्यन्त ठंडा होने के कारण मेरी जंघाएँ स्तंभित सी हो रही है। धीरे धीरे। चलेंगे।

चेटी—ऐसा ही सही।

[दोनों का प्रस्थान]

विदूषक—आओ निकलें। उसे लेकर यह दासी की पुत्री इन्दीवीरका चली गई।

[दोनों निकलते हैं।]

राजा—(लम्बी साँस लेकर) क्या गई ? मित्र वसन्तक ! दुखी लोगों की अभिलाषा विघ्न के बिना पूरी नहीं होती है। (देखकर) मित्र देखो ! देखो।

यह काँटों से युक्त कमल वन और अलंकृत तथा रोमांचित यह (मेरा) मुख भी (पुलकों से) उसके सुकुमार हस्त पल्लव के स्पर्श सुख को निवेदन सा कर रहा है ॥६॥

(लम्बी साँस लेकर) मित्र ! अब उसे देखने का क्या उपाय है ?

विदूषक—तुम्हीं गुड़िया तोड़कर अब रो रहे हो। इस मूर्ख ब्राह्मण की बातें (सुनकर) भी नहीं मानते हो।

राजा—मैंने क्या नहीं किया।

विदूषक—वह इस समय भूल गये। "चुपचाप निकट जाओ" यह मैंने कहा था। अत्यन्त संकट के समय जाकर झूठे पांडित्य की चतुरता से आप "अरी ! खेद मत करो" इन तथा अन्य भी कटु वचनों के द्वारा उसको विर्भत्सना कर इस समय क्यों रो रहे हैं। फिर भी उपाय पूछते हो।

राजा—सान्त्वना को भी मूर्ख ने विर्भत्सना कह दिया।

विदूषक—यह तो जान ही लिया गया कि यहाँ कौन मूर्ख है। इससे क्या ? भगवान् सहस्र रश्मी (सूर्य) अस्त हो रहे हैं। आओ। अन्दर प्रवेश करें।

राजा—(देखकर) अरे ! दिन समाप्त प्राय है। अहह ! इस समय—

यह दिन श्री (सूर्य की) प्रियतमा की तरह कमल वन की शोभाहरण कर चली गई। इस सूर्य के बिम्ब में मेरे चित्त की तरह

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अधिक राग (लाल रंग) दिखाई दे रहा है। चक्रवाक (पक्षी) मेरी तरह सहचरी (चक्रवाकी) का ध्यान करता हुआ नलिनी (तालाब) के किनारे बैठा है। मेरे मन की तरह संसार की दिशाएँ सहसा अंधकार युक्त हो गई हैं ॥१०॥

[सब का प्रस्थान]

[द्वितीय अंक समाप्त]

—:❀:—

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तृतीय अंक

[मनोरमा का प्रवेश]

मनोरमा—महारानी वासवदत्ता द्वारा मैं आज्ञापित हुई हूँ, "ए मनोरमे ! जो वह सांकृत्यायनी द्वारा मेरा तथा आर्यपुत्र का वृत्तान्त नाटक रूप में लिखा गया है आज तुम लोग कौमुदी महोत्सव के समय उसका शेष अभिनय कर डालो। कल शून्य हृदय वाली आरण्यका ने कुछ और ही अभिनय किया। वासवदत्ता की भूमिका धारण कर आज पुनः उसने वैसा ही किया तो अवश्य ही महारानी कुपित होंगी। उसे वहाँ देखकर खोटी खरी सुनाऊँगी। (देखकर) यह आरण्यका अपने से ही कुछ बड़बड़ाती हुई दीर्घिका के तट पर कदलीगृह को जा रही है। झाड़ी छिपकर मैं इसके निःशंक प्रलाप सुनूंगी।

(बैठी हुई तथा मदनावस्था का अभिनय करती हुई आरण्यका का प्रवेश।)

आरण्यका—(लम्बी साँस लेकर) हृदय ! दुर्लभ मनुष्य की प्रार्थना करके क्यों मुझे दुखी कर रहे हो ?

मनोरमा—यह है इसकी हृदय शून्यता का कारण ! यह क्या (किसे) प्रार्थना कर रही है ? सावधान होकर सुनूँगी।

आरण्यका—(आँखों में आँसू भरकर) अत्यन्त शुभदर्शन होकर महाराज ही मुझे क्यों सन्तप्त कर रहे हैं। आश्चर्य है। आश्चर्य है। (लम्बी साँस लेकर) अथवा यह मेरा ही अभाग्य है। महाराज का दोष नहीं है।

मनोरमा—(आँखों में आँसू भर) क्या महाराज ही इसके लिए अभिलषित हैं। साधु ! प्रिय सखि ! साधु ! अपनी कुलीनता के सदृश ही तुम्हारी अभिलाषा है।

आरण्यका—इस वृत्तान्त को किसे निवेदन कर मैं दुख की वेदनाओं को सह्य बनाऊँगी। (सोचकर) अथवा (मेरे) हृदय के सदृश मेरी प्रिय सखी मनोरमा है। किन्तु उससे भी लज्जा के कारण (यह) नहीं कह सकती। अथवा मरण छोड़कर मेरे (दुःखी) हृदय की दूसरी (और) सान्त्वना कहाँ है ?

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मनोरमा—(आँखों में आँसू भरकर) हा धिक् ! हा धिक् ! इस तपस्विनी का अनुराग सीमा का अतिक्रमण कर चुका है।

यहाँ इस समय क्या करूँगी।

आरण्यका—सस्पृह (देखती हुई।) यह वही प्रदेश है जहाँ मधुकरों से पीड़ित मुझे पकड़कर महाराज ने सान्त्वना दी थी।—"भीरु डरो मत"

मनोरमा—(सहर्ष) क्या महाराज के द्वारा भी देखी गयी है ? (अब) अवश्य ही इसके बचने का उपाय है निकट जाकर इसे सान्त्वना दूँगी। (सहसा निकट जाकर) क्या हृदय से भी लजाना उचित ही है।

आरण्यका—(लजाकर, स्वगत) हा धिक्। हा धिक्। इसने सब सुन लिया। इससे प्रकट कर देना ही उचित है। (प्रकट) (मनोरमा के हाथ पकड़कर) प्रिय सखि ! क्रोध मत करो। यहाँ अपराधिनी लज्जा है।

मनोरमा—(सहर्ष) सखि ! शंका मत करो। मुझे यह बताओ कि सचमुच तुम महाराज के द्वारा देखा गयी हो या नहीं ?

आरण्यका—(लज्जा से अधोमुख होकर) प्रिय सखी ने सब सुन ही लिया है।

मनोरमा—यदि महाराज के द्वारा तुम देखी गयी हो तो सन्ताप मत करो। वही इस समय (तुम्हारे) दर्शन के प्रयत्नों से व्याकुल होंगे।

आरण्यका—यह सखी (तुम) मेरे पक्षपात के कारण कह रही है। अरी। सखी का पक्षपात करने वाली। महाराज की गुण शृंखला में निबद्ध उस मनुष्य (महाराज) से यह कैसे हो सकता है ?

मनोरमा—(हँसकर) अरी मूर्ख ! कमलिनी के प्रेम से बँधा हुआ मधुकर भी मालती को देखकर नवीन रस की लालच से बिना उसे पाये कभी चैन पाता है ?

आरण्यका—इन असंभव बातों से क्या ? आओ ! शरद कालीन धूप से मेरे अवयव इतने सन्तप्त हुए हैं कि वह अब भी दाह नहीं छोड़ रहे हैं।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मनोरमा—अरी लज्जावती। इतनी दशा होने पर भी (तुम्हारा) छिपाना ठीक नहीं है।

[आरण्यका मुँह नीचा करती है।]

मनोरमा—अरी ! अविश्वास करने वाली ! इस समय क्यों छिपा रही हो। दिन रात तुम्हारा अनुराग कुसुमायुध के निरन्तर गिरते हुए बाणों द्वारा हुए हुँकार शब्द की तरह विश्वास के व्याज से क्या शब्द नहीं कर रहा है ? (स्वगत) अथवा यह उपालम्भ का समय नहीं हैं। कमलिनी के पत्तों को इसके हृदय पर रखूँगी। (उठकर दीर्घिकों से कमलिनी के पत्ते लेकर आरण्यका के हृदय पर रखती हुई) सावधान। सखि। सावधान।

[विदूषक का प्रवेश।]

विदूषक—प्रियमित्र आरण्यका पर महान् अनुराग है। जिसके कारण राजकार्य का परित्याग कर उसी को देखने के उपायों की सींचता हुआ वह अपने को बहलाता है। (सोचकर) इस समय उसे कहाँ देखूँगा। अथवा उसी दीर्घिकों पर देखूँगा। (परिक्रमा करते हैं।)

मनोरमा—(सुनकर) पद शब्द सा सुनाई दे रहा है किले की झाड़ी में छिपकर देखें यह कौन हैं।

[दोनों छिपकर देखते हैं।]

आरण्यका—क्या वही महाराज के निकट रहने वाला ब्राह्मण है।

मनोरमा—क्या वसन्तक ही है। (सहर्ष, स्वागत) वैसा ही हो।

विदूषक—(चारों ओर देखकर) क्या इस समय आरण्यका सचमुच (आरण्य में रहने वाली) हो गई है ?

मनोरमा—(स्मित कर) सखि। यह राजमित्र ब्राह्मण तुम्हारे (ही) उद्देश्य से (कुछ) कह रहा है। सावधान होकर सुन।

[आरण्यका सस्पृह तथा लजाकर सुनती है।]

विदूषक—(उद्वेग से) अत्यन्त मदन सन्ताप से दुखी प्रियमित्र को अस्वस्थता पूर्ण बातों से (प्रेरित होकर) महारानी वासवदत्ता पद्मावती और तथा अन्य भी रानियों के भवनों में खोजते हुए मैंने जब उसे नहीं देखा तब जिस दीर्घिका में (उसे पहले) देखा था वहाँ

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भी देखूँगा, (यह सोचकर) (यहाँ) आया हूँ। किन्तु (वह) यह भी नहीं है। अब क्या करूँ ?

मनोरमा—प्रियसखी (तुम) ने सुना ?

विदूषक—(सोचकर) अथवा प्रियमित्र द्वारा मैं कहा ही गया हूँ कि यदि अन्वेषण करने के अनन्तर भी उसे नहीं देखोगे तो भी उस दीर्घिका में से उस (आरण्यका) के करतल स्पर्श के कारण द्विगुणित शीतल हुए कमलिनी के पत्तों को ले आना"। किन्तु इन्हें उसके करतल स्पर्श के कारण द्विगुणित शीतल हुये पत्ते को कैसे पहचाना जाय ?

मनोरमा—यही मेरे लिये अवसर है। (निकट जाकर विदूषक को हाथ से पकड़ कर) वसन्तक। आओ। मैं तुम्हें बताऊँगी।

विदूषक—(भय से) तुम किसे बताओगी ? क्या महारानी को ? मैंने कुछ नहीं कहा।

मनोरमा—वसन्तक ! शंका मत करो। जिस प्रकार आरण्यका के लिये अपने प्रियमित्र की अवस्था तुमने अभी वर्णन की उससे भी अधिक महाराज के लिये मेरे प्रियसखी की अवस्था हुई है। देखो। (निकट जाकर आरण्यका को दिखाती है।)

विदूषक—(देखकर हर्ष से) मेरा परिश्रम सफल हो गया। आपका कल्याण हो।

(आरण्यका लजाकर कमलिनी के पत्ते हटाकर उठती है।)

मनोरमा—आर्य ! वसन्तक ! तुमने देखकर ही प्रिय सखी के (मदन) सन्ताप को जान लिया। जिस (सन्ताप) के कारण यह स्वयं ही कमलिनी के पत्तों को हटा रही है। आर्य इन्हें स्वीकार करें।

आरण्यका—(क्षोभ पूर्वक) अरी ! परिहास करने वाली। क्यों मुझे लज्जित कर रही हो। (कुछ घूम कर बैठती है।)

विदूषक—(खेदसे) कमलिनी के पत्ते रहने दो। तुम्हारी प्रिय सखी अत्यन्त लज्जावती है। इन दोनों (राजा तथा आरण्यका) का मिलन कहाँ होगा।

मनोरमा—(क्षणभर सोचकर, हर्ष से) वसन्तक ! इस प्रकार (होगा।) (कान में कहती है।)

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

विदूषक—साधु प्रियसखि ! साधु ! (जनान्तिक) जब तक तुम दोनों में बदलती हो तब तक मैं भी प्रियमित्र को लेकर आ रहा हूँ ।

[प्रस्थान]

मनोरमा—अत्यन्त कोप करने वाली । उठो । उठो । हम लोगों को उसी (किये हुए) नाटक के अभिनय का शेष भाग पूरा करना है । आओ । नाटक गृह की ओर ही चलें । (परिक्रमा कर तथा देखकर) यह है नाटक गृह । आओ । प्रवेश करें ।) प्रवेश का अभिनय कर तथा देखकर) साधु । साधु । सब कुछ तैयार है । महारानी का आगमन (मात्र) बाकी है ।

(सांकृत्यायनी, अपने ऐश्वर्य तथा परिवार के साथ महारानी का प्रवेश ।)

वासवदत्ता—भगवति ! तुम्हारा कवित्व प्रशंनीय है । अपने अनुभव की तरह नाटक रूप में ग्रंथित किया हुआ यह गूढ़ वृत्तान्त, जिसमें हमारा तथा आर्यपुत्र का चरित्र निर्णीत है, और जो पहले कभी भी न देखा हुआ सा प्रतीत हो रहा है, हमारे कौतूहल को अधिकतर बढ़ा रहा है ।

सांकृत्यायनी—आयुष्मति ! यह इस प्रकार होने का कारण (इसका) आश्रयगुण ही है । अवश्य ही (अच्छे आश्रय वाला) तुच्छ काव्य सुनने वाला को श्रवण सुख देता है । देखो ।

तुच्छ वस्तु भी महान् वस्तु के आश्रय से उत्कर्ष को प्राप्त होती है । (चिता) भस्म उन्मत्त होथा के कपोल का आश्रय कर शृंगार (का कारण) होता है ॥१॥

वासवदत्ता—(स्मित हास्य कर) भगवति । दामाद सब को प्रिय होता है । यह तो ज्ञात ही है । इस कथा के कहने से क्या लाभ ? उसी अभिनय को देखना अच्छा होगा ।

सांकृत्यायनी—ऐसा ही हो । इन्दीवरिके ! नाटक गृह (का मार्ग) बताओ ।

क्कइस नाटक की रचना कुछ दोषपूर्ण है । यहाँ यह प्रतीत नहीं होता कि सांकृत्यायनी कौन थी, उसका, वत्सराज से क्या सम्बन्ध था । इस वाक्य से प्रतीत होता है कि सांकृत्यायनी वासवदत्ता पर सापत्न प्रेम करती थी । अतः एव वत्सराज को जामाता कहा है ।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

चेटी—स्वामिनी ! इधर से आएँ। (सब परिक्रमा करती हैं)

सांकृत्यायनी—(देखकर) नाटकगृह दर्शनीय है। सैकड़ों रत्नों से सुशोभित सुवर्ण के स्तम्भों में लगे हुए बड़े मोतियों के वन्दनवार से मनोहर तथा अप्सराओं को जीतने वाली तरुणियों द्वारा अधिष्ठित, देवताओं के विमान की तरह यह नाटकगृह सुशोभित है ॥२॥

मनोरमा तथा आरण्यका—(निकट जाकर) महारानी की विजय हो।

वासवदत्ता—मनोरमे ! संध्या बीत गई। जाओ। शीघ्र वेष परिवर्तन करो।

दोनों—जो महारानी की आज्ञा !

[दोनों जाने लगती हैं।]

वासवदत्ता—आरण्यके ! नेपथ्य में जाकर इन मेरे पहने हुए आभूषणों से अपने को सजाओ। (शरीर से आभूषण उतार कर आरण्यका को देती है।) मनोरमे ! तुम भी नलगिरि (नामक) हाथी को पकड़ने से सन्तुष्ट पिता जी ने आर्यपुत्र को दिये हुए आभूषणों को इन्दीवरिका से लेकर, नेपथ्य में जाकर अपने को (ऐसा) सजाना जिससे तुम महाराज के सदृश दिखाई दो।

(मनोरमा इन्दीवरिका से आभूषण लेकर आरण्यका के साथ जाती है।)

इन्दीवरिका—यह आसन है। महारानी बैठें।

वासवदत्ता—(आसन को दिखा कर) भगवती बैठें।

[दोनों बैठती हैं।]

[वेष धारण किये हुए कंचुकी का प्रवेश।]

कंचुकी—अन्तःपुर की व्यवस्था करने वाला, पद पद पर हुई गलतियों को बचाता हुआ इस समय वृद्धावस्था के कारण दुखी मैं दण्डनीति* के द्वारा नृपति के संपूर्ण चरित्र का अनुकरण करता हूँ।

समस्त शत्रु सैन्य को अपमानित करने वाले, (अतएव) सार्थक

* कंचुकी के हाथ में एक दण्ड होता है। यहाँ दण्ड का अर्थ 'दण्डनीति तथा साधारण दण्ड' दोनों ही है।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

नामवाले महासेन के द्वारा मैं आज्ञापित हुआ हूँ। "अन्तःपुर में" घोषणा कर दो। जैसे—'कल हम लोग उदयनोत्सव मनाएँगे।'

अतः आप को उत्सव के अनुरूप उज्वल वेष धारण कर अपनी परिचारिकाओं के साथ मन्मथोद्यान जाना चाहिये।"

सांकृत्यायनी—(कंचुकि को दिखाकर) राजपुत्री! नाटक आरम्भ हो गया। देखो।

कंचुकी—'परिचारिकाओं के साथ जाना चाहिये' यह कहना है। 'वेष बदलकर' यह नहीं कहना है। क्योंकि:—

इन अन्तःपुरों में नूपुर युक्त चरणों के द्वारा, बजती हुई करधनी से युक्त विशाल नितम्बों के द्वारा, हारों से प्राप्त हुई शोभावाले स्तन तटों के द्वारा, केयूर आभूषणों से विभूषित भुजाओं के द्वारा, कुण्डल धारण किये हुए कानों के द्वारा, कंकण सहित हाथों के द्वारा तथा स्वस्तिकाकार आभूषण से सुशोभित बालों के द्वारा (वेष बदली हुई सी) महारानी की परिचारिकाएँ तथा सेविकाएँ दिखाई दे रहीं हैं ॥४॥

इसमें कुछ अपूर्व (काम) नहीं करना है। केवल स्वामी का आदेश पूरा करना है। यह समझकर मैं भेजा गया हूँ शेष आज्ञा राजपुत्री को निवेदन कर दूँ। (परिक्रमा कर तथा देखकर) यह वासवदत्ता, जिसके पीछे हाथ में वीणा ली हुई कांचनमाला जा रही है, गन्धर्वशाला (गानशाला) में चली गई। इससे कहूँ।

(वासवदत्ता का वेष धारण कर बैठी हुई आरण्यका तथा हाथ में वीणा ली हुई कांचनमाला का प्रवेश।)

आरण्यका—ए कांचनमाले! आज वीणाचार्य क्यों देर कर रहे हैं?

कांचनमाला—भर्तृदारिके! उन्होंने एक उन्मत्त को देखा उसकी बातें सुनकर वे आश्चर्य चकित होकर हँसते हुए खड़े हैं।

आरण्यका—(ताली बजाती हुई हँसकर) ए! (वे) उसे ठीक (ही) पूछ रहे हैं। लोग अपने समान में ही आकृष्ट होते हैं। यहाँ दोनों ही उन्मत्त हैं।

सांकृत्यायनी—इसकी आकृति राजपुत्री की तरह देख रही हूँ। इसकी उस प्रकार की आकृति के कारण यह अवश्य तुम्हारी भूमिका (सफलता से) पूरी करेगी।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कंचुकी—(निकट जाकर) राजपुत्री ! महाराज तुम्हें आज्ञा दे रहे हैं। "कल हम अवश्य ही (तुमसे) वीणा सुनेंगे। अतः तुम नवीन तारों से सुसज्जित वीणा लेकर तैयार रहना।

आरण्यका—यदि ऐसा है तो शीघ्र वीणाचार्य को भेजो।

कंचुकी—यह (मैं) वत्सराज को भेज रहा हूँ।

[प्रस्थान]

आरण्यका—कांचनमाले ! मेरी वीणा को उठाओ। उसकी तन्त्रियों को मिलाऊँ।

[कांचनमाला वीणा देती है। आरण्यका गोद में वीणा लेकर लेकर मिलाती है। (सुर मिलाती है।)]

[वत्सराज का वेष धारण की हुई मनोरमा का प्रवेश।]

मनोरमा—(स्वगत) महाराज देर कर रहे हैं। क्या वसन्तक ने नहीं कहा ? अथवा वे महारानी से डरते हैं ? यदि (वे) इस समय आ जाँय तो अत्यन्त मनोहर हो।

[अवगुंठन लिये हुए राजा तथा विदूषक का प्रवेश।]

राजा—

आज शीतांशु (चन्द्रमा) उतना सन्ताप नहीं कर रहा है जितना पहले (करता था।) इस समय उष्ण निश्वास अधरों को सतत म्लान भी नहीं कर रहे हैं। इस समय मन शून्य भी नहीं है और मेरे अवयव पूर्ववत् अलसाये भी नहीं हैं क्योंकि मनोरथों का चिन्तन करने पर भी दुःख कम होता जाता है ॥५॥

मित्र ! मनोरमा ने सच ही कहा था जैसे "यह मेरी प्रिय सखी महाराज की महारानी (वासवदत्ता) के नेत्रपथ से बची रहे ऐसा यह मिलन का उपाय है। आज रात के समय हम लोगों को 'उदयन चरित' नामक नाटक महारानी के सामने खेलना है। वहीं आरण्यका वासवदत्ता होगी और मैं वत्सराज। उसी (वास्तव में हुए) चरित्र से सब कुछ सीखना होगा। अतः आप (राजा) आकर स्वयं अपनी भूमिका लेकर समागमोत्सव (के सुख) का अनुभव करें।"

विदूषक—यदि मुझपर विश्वास हो तो यह मनोरमा तुम्हारा वेष धारण किये खड़ी है। निकट जाकर स्वयं ही पूछ लो।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

राजा—(मनोरमा के निकट जाकर) मनोरमे ! क्या यह सच है जो बसन्तक कह रहा है ?

मनोरमा—महाराज ! सच ही है। इन आभूषणों से अपने को सजाइये। (शरीर से आभूषण उतार कर राजा को देती है।)

[राजा धारण करता है।]

विदूषक—ये राजा हैं, जो दासी के द्वारा भी इस प्रकार बचाए जाते हैं। अहो ! कार्य का महत्व है।

राजा—(हँसकर) मूर्ख ! यह परिहास का समय नहीं है। छिप कर चित्रशाला में प्रवेश कर मनोरमा के साथ हमारे अभिनय को देखते हुए रुको।

[दोनों वैसा ही करते हैं।]

आरण्यका—कांचन माले ! वीणा रहने दो। कुछ पूछूंगी।

राजा—सुनूँ, यह कौन सा प्रसंग चल रहा है। (सावधान होकर सुनता है।)

कांचनमाला—भर्तृदारिका पूछें।

आरण्यका—क्या सचमुच पिता जी ऐसा कहते हैं कि "यदि वीणा बजाते हुए वत्सराज मेरा अपहरण कर लें तो (मैं) (उन्हें) अवश्य ही कारागृह से मुक्त कर दूँगा।

राजा—परदा हटाकर तथा प्रवेश कर हर्ष से वस्त्र में गाँठ* लगाता है। ऐसा ही है। इसमें क्या सन्देह है ?

प्रद्योत को सपरिवार आश्चर्य चकित कर वीणा को बजाता हुआ मैं वासवदत्ता का अपहरण करूँगा** ....॥६॥

क्योंकि यौगंधरायण ने सब तैयारी करली है।

वासवदत्ता—(सहसा उठकर) आर्य पुत्र की विजय हो।

---

*इसे शकुन गाँठ भी कहते हैं। यह तब लगाई जाती थी जब मनुष्य किसी कार्य का निश्चय करता था।

**इस श्लोक के चौथे चरण का पाठ कुछ भ्रष्ट सा प्रतीत होता है। अतः अनुवाद नहीं किया गया। उपस्थित पाठ का यह अनुवाद हो सकता है। "चिरकाल तक न देखूँगा।" अर्थात् "इस कार्य को शीघ्र ही देखूँगा।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

राजा—(स्वगत) क्या मैं देवी (वासवदत्ता) द्वारा पहिचान लिया गया ?

सांकृत्यायनी—(स्मित कर) राजपुत्री ! घबराओ मत। यह नाटक है।

राजा—(स्वगत, हर्ष से) अब मेरे शरीर में प्राण आ गये।

वासवदत्ता—(विस्मय पूर्वक स्मित हास्य करती हुई बैठकर) क्या यह मनोरमा है ? मैंने समझा कि ये आर्यपुत्र (ही) हैं। साधु ! मनोरमे ! साधु ! अच्छा अभिनय किया।

सांकृत्यायनी—राजपुत्री ! मनोरमा ने तुम्हें भ्रम ठीक ही किया। देखो :—

नयनों को आनन्द देने वाला वह रूप, वही उज्वल वेष, वह उन्मत हाथियों के समान चाल, व अत्यन्त तेज स्त्री स्वभाव, वही लीला, वही जल भरे बादलों का शब्द है। इन सबों से इस चतुर (मनोरमा) ने हमलोगों का प्रत्यक्ष वत्सराज को ही दिखा दिया है ॥७॥

वासवदत्ता—ए इन्दीवीरके। (पैर में कड़ियों से) जकड़े हुए आर्यपुत्र से मैंने वीणा सीखी थी। इसे नील कमल की माला से जकड़ दो।

(शिर से नीलकमल की माला निकाल कर देती है।)

(इन्दीवीरका (राजा को) जकड़कर फिर वहीं बैठती है।)

आरण्यका—कांचनमाले। कहो। कहो। क्या सचमुच पिता जी ऐसा कहते हैं कि "यदि वीणा बजाते हुए वत्सराज मेरा अपहरण कर लें तो (मैं) (उन्हें) अवश्य ही कारागृह से मुक्त कर दूँगा"।

कांचनमाले—भर्तृदारिके ! सच ! वैसा ही करो जिससे तुम वत्सराज को अवश्य ही प्रिय हो जाओ।

राजा—जो हम लोग उस समय चाहते थे वह कांचनमाला ने कह दिया।

आरण्यका—यदि ऐसा है तो ध्यान से बताऊँगी। (गाती हुई लजाती है।)

राजहंस मेघ* बन्धन से व्याप्त आकाश को देखकर अपनी स्त्री

---

*इस पद्य से यह ध्वनि भी होती है कि "वायुमंडल उत्क्षुब्ध देखकर अतःएव अवसर पाकर राजहंस राजा वत्सराज अपनी प्रिया वासवदत्ता के साथ अपने घर जाना चाहता है"।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

के साथ अपने वसीत स्थान मानसरोवर को आने की इच्छा करता है ॥८॥

[विदूषक निद्रा का अभिनय करता है।]

मनोरमा—(हाथ से हिलाकर) वसन्तक। देखो। देखो। मेरी प्रियसखी गा रही है।

विदूषक—(क्रोध से) दासी पुत्री! तू भी सोने नहीं देती। जब से प्रिय मित्र ने आरण्यका को देखा है तब से मैंने रात दिन नींद को न देखा। अतः दूर जाकर सोऊँगा। (जाकर सोती है।)

[आरण्यका फिर गाती है।]

नवीन अनुराग से उत्क्षुब्ध मधुकरीक्ष (भ्रमरी) टेढ़े काम से प्रिय दर्शन प्रियतम को देखने के लिये प्रार्थना करती हुई उत्सुक हो रही है ॥९॥

राजा—(क्षणमात्र सुनकर सहसा निकट जाकर) साधु राजपुत्री। साधु। वाद्य तथा संगीत प्रशंनीय है। क्योंकिः—

इस समय दश विध व्यंजन धातुओं (आरोहवरोहों से युक्त) यहाँ स्पष्ट है। यह लय (ताल) द्रुत (तीव्र) मध्य (साधारण) तथा लम्बित इन त्रिविध विभागों से यहाँ स्पष्ट हो रहा है। जिस गीत में क्रमशः गोपुच्छ आदि तीनों यतियों (विराम) का संपादन हुआ है, और जिसमें तत्व, अधि (तथा) अनुगत नामक वाद्य के त्रिविध प्रकार भी भली भाँति दिखाये गये हैं ॥१०॥

आरण्यका—(वीणा का आलिंगनक्ष कर, आसन से उठकर राजा को सस्पृह देखती हुई) उपाध्याय! प्रणाम करती हूँ।

राजा—(स्मित हास्यकर) जो मैं चाहता हूँ वह तुम्हारे लिये हो।

कांचनमाला—(आरण्यका का आसन दिखाकर। यहीं पर उपाध्याय बैठें।)

राजा—(बैठकर) (फिर) राजपुत्री इस समय कहाँ बैठेगी?

कांचनमाला—(स्मितहास्यकर) अभी आपके द्वारा हुए विद्या के सम्मान से भर्तृदारिका सन्तुष्ट हुई है। अतः यह उपाध्याय के आसन पर (ही, बैठ) सकती हैं।

क्षयहाँ मधुकरी से वासवदत्ता को भी ध्वनि है।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

राजा—अधीन के योग्य यह (मेरे आसन पर) बैठे। राज पुत्री बैठो।

[आरण्यका कांचनमाला की ओर देखती है।]

कांचनमाला—(स्मितहास्यकर) भर्तृदारिके। बैठो। इसमें क्या अनुभव है। तुम तो इनकी प्रमुख शिष्या हो।

[आरण्यका लजाती हुई बैठती है।]

वासवदत्ता—(लजाती हुई) भगवती ने काव्य में अधिक कल्पना की है। मैं उस समय आर्यपुत्र के साथ एक आसन पर नहीं बैठी थी।

राजा—राजपुत्री। फिर सुनना चाहता हूँ। वीणा बजाओ।

आरण्यका—(स्मित हास्यकर) कांचनमाले! चिरक्लेस (वीणा) बजाती हुई मैं थक गई हूँ। इस समय (मेरे) अवयव शिथिल हो गये हैं। अतः बजा नहीं सकती।

कांचनमाला—भर्तृदारिका बहुत थक गई हैं। इस (राजपुत्री) की, जिसके कपोल पर स्वेदकण चमक रहे हैं, दोनों हाथों की उंगलियां कंप रही है। यह क्षण भर (आपके द्वारा) आश्वस्त हो।

राजा—कांचनमाले। ठीक कहा। (हाथ से पकड़ना चाहता है।)

[आरण्यका हाथ हटाती है।]

वासवदत्ता—(ईर्ष्या से) भगवति। तुमने यह अधिक (वर्णन) किया है। कांचनमाला के काव्य से मैं उगने योग्य नहीं हूँ।

सांकृत्यायनी—(हँसकर) आयुष्मति! काव्य इसी प्रकार होगा।

आरण्यका—(क्रोधित सी होकर) जाओ! कांचनमाले! जाओ। मुझे (तुम) अच्छी नहीं लगती हो।

कांचनमाला—(स्मित हास्यकर) यदि मैं यहाँ खड़ी हुई (तुम्हें) अच्छी नहीं लगती हू तो यह (मैं) जा रही हूँ।

[प्रस्थान]

आरण्यका—(घबराकर) कांचनमाले! रुको! रुको! यह अग्र-हस्त (उंगलियाँ) इसे (राजा को) दे दिया।

राजा—(आरण्यका का हाथ पकड़कर)

दव विन्दुओं के स्पर्श से शीतल क्या यह पद्मकोश (कमल-

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

गट्टा) है ? प्रातःकाल के समय धूप रहितक्ष इस कमल का आनन्द देने का गुण (साधारण कमल के) समान नहीं है। ये पांच नख रूपी रजनिकर (चन्द्रमा) क्या हिम वर्षा कर रहे हैं। किन्तु क्या (चन्द्रमा) भी जलाने वाले हैं। (मैंने) जान लिया। यह स्वेद के व्याज से (इसके शरीर से) सतत अमृत चू रहा है।

और भी,

विद्रुम वृक्ष के छोटे छोटे पल्लवों की शोभा अपहरण करने में चतुर अपने इस हाथ से तुमने यह राग (अनुराग) मेरे हृदय में रख दिया ॥१२॥

आरण्यका—(स्पर्श विशेष का अभिनय करती हुई) हा धिक् ! हा धिक् ! इस मनोरमा को स्पर्श कर मेरे अवयव तो अनर्थ कर रहे हैं।

वासवदत्ता—(सहसा उठकर) भगवति तुम्ही देखो। मैं असत्य नहीं देख सकती।

सांकृत्यायनी—राजपुत्री। यह धर्मशास्त्र विहित गान्धर्व विवाह है। इसमें लज्जा के लिये अवसर नहीं है। यह नाटक है। असमय में रसभंग कर जाना उचित नहीं।

[वासवदत्ता परिक्रमा करती है।]

इन्दीवीरका—(देखकर) महारानी ! चित्र शाला के द्वार पर वसन्तक सो रहा है।

वासवदत्ता—(ध्यान से देखकर) यह वसन्तक ही है। (सोचकर) राजा को भी यहीं होना चाहिये। जगाकर इससे पूछूँगा। (जगाती है।)

विदूषक—(नींद से भरा हुआ सहसा उठकर) मनोरमे ! क्या प्रियमित्र अभिनय कर आ गया। अथवा (अभी) अभिनय हो कर रहा है।

वासवदत्ता—(खेद से) क्या आर्यपुत्र अभिनय कर रहे हैं ? (फिर) इस समय मनोरमा कहाँ हैं ?

विदूषक—यह चित्रशाला के द्वार पर है।

मनोरमा—(भय से, स्वगत) महारानी ने कुछ और ही

क्षधूप होने पर इस कमल के मलिन होने की संभावना थी।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.
BVRSSMV

सोचकर पूछा। और इस मूर्ख बटु ने कुछ और ही समझ कर सब बिगाड़ दिया।

वासवदत्ता—(क्रोध पूर्ण हँसती हुई) साधु! मनोरमे! साधु! तुमने अच्छा अभिनय किया।

मनोरमा—(भय से कांपती हुई पैरों पर गिर कर) महारानी! मैं ही अपराधिनी नहीं हूँ। इस हताश (मूर्ख) ने बलपूर्वक आभूषणों को लेकर तथा द्वार पर खड़े होकर मुझे रोक रक्खा। चिल्लाती हुई भी मेरा शब्द (इस) मूर्ख की चिल्लाहट में किसी ने न सुना।

वासवदत्ता—ए! उठो। मैंने सब जान लिया। (इस) आरण्यका वृत्तान्त रूप नाटक में सूत्र धार वसन्तक है।

विदूषक—स्वंय ही सोच लो। कहाँ आरण्यका और कहाँ वसन्तक!

वासवदत्ता—मनोरमे! इसे अच्छी तरह बाँध कर ले आओ। तब तक मैं इस (राजा) के नाटक को देखती हूँ।

मनोरमा—(स्वगत) अब शरीर में प्राण आये। (प्रकट, विदूषक के दोनों हाथ बाँधती हैं।) हताश। अब अपने अविनय का फल चखो।

वासवदत्ता—(उत्क्षुब्ध सी निकट जाकर) आर्यपुत्र! अमंगल नष्ट हो। (चरणों में बँधी हुई नील कमल की माला को छुड़ाती हुई, उपालम्भ से) आर्यपुत्र क्षमा करें। मनोरमा समझ कर नीलकमल की माला से (तुम) जकड़े गये।

[आरण्यका भय से हटकर खड़ी होती है।]

राजा—(सहसा उठकर विदूषक तथा मनोरमा को देख कर, स्वगत, क्या देवी के द्वारा (मैं) पहिचान लिया गया लज्जा का अभिनय करता है।)

सांकृत्यायनी—(सब को देखकर स्मित हास करती हुई) यह तो कुछ और ही नाटक हो गया। हम ऐसे (लोगों को रहने) के लिये यह स्थान उचित नहीं है।

[प्रस्थान।]

राजा—(स्वगत) यह क्रोध का प्रकार अपूर्व है। यहाँ अनुनय

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(की सफलता) मैं कठिन समझता हूँ। (सोचकर) ऐसा करूँगा। (प्रकट) देवि। कोप छोड़ दो।

वासवदत्ता—आर्यपुत्र! यहाँ कुपित कौन है?

राजा—क्या तुम कुपित नहीं हो?

यद्यपि (तुम्हारी) दृष्टि स्निग्ध है, फिर भी (तुम्हारी) आँखों की कान्ति लाल है। माधुर्य होने पर भी तुम्हारी यह वाणी पद पद पर गद्गद होकर लड़खड़ा रही है। संयत किये जाने पर भी (ये) निश्वास, स्तन-भार के उत्कंपन से लक्षित हो रहे हैं। अतः प्रकट प्रयत्नों से छिपा हुआ भी तुम्हारा यह कोप स्पष्ट प्रतीत हो रहा है ॥३॥

(चरणों पर गिरकर) दया करो! दया करो।

वासवदत्ता—आरण्यके। तुम कुपित हुई हो ऐसा समझ कर (तुम्हें) आर्यपुत्र "प्रिये! दया करो" यह कहकर प्रसन्न कर रहे हैं। निकट जाओ। (हाथ से खींचती है।)

आरण्यका—(भय से) महारानी! मैं कुछ नहीं जानती हूँ।

वासवदत्ता—आरण्यके! तुम कैसे नहीं जानती हो। अब तुम्हें मैं सिखाऊँगी। इन्दीवरके। इसे पकड़ो।

विदूषक—आज कौमुदी महोत्सव के समय तुम्हारा मन खींचने (बहलाने) के लिये प्रिय मित्र ने यह नाटक खेला था।

वासवदत्ता—तुम लोगों की दुष्टता देख कर मुझे हँसी आ रही है।

राजा—देवि! अन्यथा शंका मत करो। देखो।

भृकुटियाँ टेढ़ी कर ललाटरूपी चन्द्रमा को वृथा कलंकित क्योंकर रही हो?

अधरों को स्फुरित कर (उन्हें) वायु से विकम्पित बन्धुजीव (इष हरिद्र का फूल) की तरह क्यों बनाती हो। यह मध्य, (कटि भाग) स्तन भार के अधिक कंपित होने से दुखी हो रहा है। अतःकोप छोड़ दो। तुम्हारा ही मन खींचने (बहलाने) के लिये मैंने यह खेल किया था ॥१४॥

देवि! दया करो। दया करो। (चरणों पर गिरता है।)

वासवदत्ता—ए! नाटक समाप्त हो गया। आओ अन्दर ही चलें।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

[प्रस्थान]

राजा—(देखकर) बिना दया किये ही देवी चली गयीं।

देवी (वासवदत्ता) तथा प्रिया (आरण्यका) के इस मुख को, जिनमें से एक क्रोध के कारण स्वेद के जलकण भिन्न होकर भीषण भृकुटियों से युक्त दिखाई दे रहा है, और दूसरा (वासवदत्ता के) त्रास के कारण पुनः पुनः फड़कने वाले अतःएव मृग के समान चंचल नेत्र कमल सा शोभित दिखाई दे रहा है। सामने से देखता हुआ, मैं (वासवदत्ता से) भीत तथा (आरण्यका के लिये) सब से उत्सुक होकर ❀(मैं) महान संकट में पड़ गया हूँ ॥१५॥

अब इस समय बिछौने पर जाकर देवी को प्रसन्न करने के उपाय सोचूं।

[सब का प्रस्थान]

[तृतीय अंक समाप्त।]

❀यह (मैं) यहाँ अधिक है।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

चतुर्थ अंक

[मनोरमा का प्रवेश।]

मनोरमा—(उद्वेग से) अहो ! महारानी दीर्घक्रोधी हैं। अब तक निगडित की गई प्रियसखी आरण्यका पर कैसे दया नहीं कर रही है। (आँखों में आँसू भरकर) वह तपस्विनी अपने बन्धन के क्लेश से उतनी दुखी नहीं हो रही है जितनी महाराज के दर्शन की निराशा से (दुखी हो रही है)। इसका दुःख इस प्रकार है कि आज ही (वह अपना आत्मघात करती हुई) मेरे द्वारा किसी प्रकार रोकी गई। इस वृत्तान्त को महाराज से निवेदन कर दो, यह मैं वसन्तक से कह कर अभी आई हूँ।

[कांचनमाला का प्रवेश।]

कांचनमाला—ढूँढ़ कर भी मैंने भगवती सांकृत्यायनी को नहीं देखा। (देखकर) इस मनोरमा को भी पूछूँगी। (निकट जाकर) मनोरमे ! क्या (तुम) जानती हो कि भगवती सांकृत्यायनी कहाँ हैं ?

मनोरमा—(आँसू पोंछकर) कांचनमाले ! (मैंने उनको) देखा है। उनसे क्या काम है ?

कांचनमाला—मनोरमे ! देवी अङ्गारवतीक्ष ने आज (एक) पत्र भेजा है। उसे पढ़कर महारानी आँखों में आँसू भरकर अत्यन्त क्षुब्ध हो रही हैं। उन्हें बहलाने के लिये भगवती को ढूँढ़ रही हूँ।

मनोरमा—किन्तु उस पत्र में क्या लिखा था ?

कांचनमाला—"जो मेरी बहिन है वह तुम्हारी माँ ही है। उसका पति दृढ़वर्मा तुम्हारा पिता (ही) है। क्या तुम्हें भी यह कहना चाहिये। दुष्ट कलिंग के द्वारा कैद हुए उसे (दृढ़वर्मा को) एक वर्ष से कुछ अधिक हो गया। इस अनिष्ट वृत्तान्त को सुनकर निकट रहने वाले तथा समर्थ तुम्हारे पति को ही उदासीन होना, उचित नहीं है।

मनोरमा—कांचनमाले ! तब यह वृत्तान्त महारानी को कोई भी पढ़कर न सुनाए यह महाराज ने आज्ञा दी थी। फिर वह पत्र (उसे) इस समय किसने सुनाया ?

क्ष वासवदत्ता की माँ।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कांचनमाला—पढ़कर मौन हुई मेरे हाथ से लेकर स्वयं ही महारानी ने पढ़ लिया।

मनोरमा—तुम जाओ। ये महारानी उसी (सांकृत्यायनी) के साथ (गज) दन्त से बने बारजे में बैठी हैं।

कांचनमाला—तो मैं महारानी के पास जाऊँगी।

[प्रस्थान।]

मनोरमा—आरण्यका के पास से जाकर मुझे देर हुई। वह तपस्विनी अपने जीवन से अत्यन्त उब गयी है। कदाचित् (कोई) अपघात हो जायगा। अतः वहीं जाती हूँ।

[प्रस्थान।]

[प्रवेशक समाप्त।]

(उद्वेगपूर्ण तथा बैठी हुई वासवदत्ता) सांकृत्यायनी तथा वासवदत्ता के वैभव पूर्ण परिवार का प्रवेश।]

सांकृत्यायनी—राजपुत्री। उद्वेग मत करो। वत्सराज इस प्रकार नहीं हैं। क्या तुम्हारी माता के बहनोई की इस प्रकार दशा होने पर भी वत्सराज निश्चिन्त रह सकते हैं ?

वासवदत्ता—(आँखों में आँसू भरकर) तुम अत्यन्त सरल हो। जिसे मुझसे काम नहीं है उसे (भला) मेरे सम्बन्धियों से क्या काम ? आर्या (माता) को मुझे यह लिखना उचित (ही) था। किन्तु वह नहीं जानती है कि अब वासवदत्ता पहली तरह नहीं है। तुम्हारे सामने यह आरण्यका का वृत्तान्त प्रत्यक्ष ही है। फिर भी यह कैसे कहती हो ?

सांकृत्यायनी—प्रत्यक्ष है, इसीलिये कह रही हूँ। उन्होंने कौमुदी महोत्सव के समय तुम्हें हंसाने के लिये कैसा खेल किया था।

वासवदत्ता—भगवति। यही सच है। मैं इस प्रकार हंसी गयी कि जिससे भगवती के सामने लज्जा के कारण किसी प्रकार (कठिनता से) रुक रही हूँ। उन बातों से क्या लाभ ? (तुम्हारे) इसी पक्षपात से ही मैं इस दशा को प्राप्त हुई। (रोती है।)

सांकृत्यायनी—राजपुत्री ! रोओ मत। वत्सराज इस प्रकार का नहीं है। (देखकर) अथवा यह आ ही गये। वे तुम्हारे शोक को दूर करेंगे।

वासवदत्ता—इस समय भगवती के ये मनोरथ मात्र हैं।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

[राजा तथा विदूषक का प्रवेश।]

राजा—मित्र ! प्रियतमा (आरण्यका) को छुड़ाने का इस समय क्या उपाय है ?

विदूषक—मित्र ! खेद मत करो। मैं तुम्हें उपाय बताऊँगा।

राजा—(हर्ष से) मित्र ! शीघ्र बताओ।

विदूषक—तुम अनेक समरांगणों में युद्ध करने के कारण अत्यन्त प्रभावशाली भुजा वाले हो। और भी अनेक हाथी, घोड़े तथा पैदल के अजिंक्य सैन्य से प्रकाशित हो संपूर्ण सैन्य समूह से अन्तपुर को अत्यन्त पीड़ित कर तुम इसी समय आरण्यका को छुड़ा लो।

राजा—मित्र ! उपदेश अशक्य है।

विदूषक—इसमें अशक्य क्या है ? वहाँ कुब्जाएँ, वामन (बौने) वृद्ध कंचुकी को छोड़कर दूसरा (कोई) मनुष्य नहीं रहता।

राजा—(डांटकर) मूर्ख ! क्या बड़बड़ा रहे हो। देवी की प्रसन्नता छोड़कर उसे (आरण्यका के) छुड़ाने का दूसरा कोई उपाय नहीं है। कहो। कैसे देवी को प्रसन्न करूँ ?

विदूषक—(एक) मास अनशन कर प्राण धारण करो। इस प्रकार देवी चण्डी प्रसन्न हो जायँगी।

राजा—(हँसकर) परिहास मत करो ! देवी को कैसे प्रसन्न करूँ ?

क्या धृष्ट बनकर (उसे) सामने से छेंककर हँसता हुआ (मैं) प्रिया (वासवदत्ता) को गले लगाऊँ, अथवा चाटुकारी की विविध बातों से उसे प्रसन्न करूँ, या सामने हाथ जोड़कर देवी के चरणों पर गिरा रहूँ ? अहो ! देवी की अनुनय कैसे होगी यह मैं सचमुच नहीं समझ पा रहा हूँ ॥१४॥

आओ ! देवी के निकट ही चलें।

विदूषक—तुम जाओ ! मैं अभी ही किसी प्रकार कारागृह से भागकर आया हूँ। मैं न जाऊँगा।

राजा—(हँसकर, गला पकड़कर हठात् लौटता है।) मूर्ख ! आओ ! आओ ! परिक्रमा कर तथा देखकर यह देवी (गज) दन्त से बने हुए बारजे में बैठी हैं। निकट जाऊँ। (लजाता हुआ निकट जाता है।)

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

[वासवदत्ता विषाद पूर्वक आसन से उठती है।]

राजा—आसन क्यों छोड़ दिया ? मुझसे क्षुभित मत हो। दुर्बल मध्य (कटि) वाली मेरे लिये इस प्रकार उठना उचित नहीं है। यह जन दृष्टि के प्रसाद से ही सन्तुष्ट कर दिया गया है फिर अत्यन्त आदर दिखाकर लज्जित क्यों किया जा रहा है ? ॥२॥

वासवदत्ता—(ध्यान से मुख देखकर) आर्यपुत्र तुम इस समय लज्जित हो ?

राजा—प्रिये ! सचमुच मैं लज्जित हूँ। जो मैं अपराध के प्रत्यक्ष देखे जाने पर भी तुम्हें प्रसन्न करने लिये प्रयत्न कर रहा हूँ।

सांकृत्यायनी—(आसन दिखाकर) महाराज ! आसन पर बैठें।

राजा—(आसन दिखाकर) देवी यहाँ बैठें।

[वासवदत्ता जमीन पर बैठती है।]

राजा—आः ! क्या देवी जमीन पर बैठी हैं। मैं भी यहीं बैठूँगा। (जमीन पर बैठकर हाथ जोड़कर) प्रिये। दया करो ! दया करो ! इस प्रकार अत्यन्त नम्र होने पर भी मुझ पर क्यों अत्यन्त गंभीर कोप कर रही हो।

सुन्दर नेत्र वाली ! भृकुटियों को टेड़ी नहीं कर रही हो। केवल रो रही हो। धीरे धीरे विस्फुरित होने वाले अधरों से निरन्तर विश्वास को ही छोड़ रही हो। (मेरी बातों का) उत्तर नहीं दे रही हो। अत्यन्त ध्यान में मग्न नतमुख होकर बैठी हो। तुम्हारा छिपा हुआ कोप मुझे भीतरी चोट की तरह अत्यन्त दुखी कर रहा है ॥३॥

प्रिये ! दया करो ! दया करो ! (चरणों पर गिरता है।)

वासवदत्ता (तुम तो) अत्यन्त सुखी हो। क्यों (इस) दुखी जन को कष्ट दे रहे हो। उठो ! यहाँ कौन कुपित है ?

सांकृत्यायनी—महाराज ! उठो ! इससे क्या ? इसके उद्वेग का कारण कुछ और ही है।

राजा—(घबराकर) भगवति ! वह और क्या है ?

[सांकृत्यायनी कान में कहती है।]

राजा—(हँसकर) यदि ऐसा है तो उद्वेग का क्या काम ? मैं भी जानता हूँ। (इस कार्य के सिद्ध होने पर देवी को बधाई दूँगा) यह सोचकर मैंने नहीं कहा। अन्यथा मैं कैसे दृढ़वर्मा के वृत्तान्त पर

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

निश्चिन्त बैठा रहूँगा। वहाँ से समाचार आये कुछ दिन हुए। वहाँ (का) यह (समाचार) है।

हमारे उस सैन्य के द्वारा, जिसके आगे विजयसेन था, (उसकी) बाहर की सेना पराजित हो गयी है। (अतःएव) प्रताप रहित वह दुष्ट कलिंग किले में सहसा घुसकर (अब) अनाथ हुआ केवल दुर्ग की शरण में कर दिया गया है ॥४॥

उस अवस्था वाले उसे,

भगवति ! उल्लिखित आक्रमण से उत्साह हीन उध्वस्त होते हुए, हाथी घोड़े तथा नर (पदाति) की विनष्ट होती हुई (अतःएव) क्षीण तथा निःशेष सेना से युक्त कलिंग को खरीदे हुए जिसके वीरों का समाचार प्रतिदिन (उनके मरने से अथवा भाग जाने से) समाप्त हो रहा है, आज कल में ही मेरे सैन्य के द्वारा शीघ्र चारों ओर से दुर्ग भग्न होने पर, तुम युद्ध में उसको मृत अथवा कैद हुए देर से न सुनोगी। (शीघ्र सुनोगी।) ॥५॥

सांकृत्यायनी—राजपुत्री ! मैंने तुमसे पहले ही कह दिया था कि वत्सराज (इसका) प्रतीकार किये बिना कैसे रह सकते हैं।

वासवदत्ता—यदि ऐसा है तो मुझे प्रिय है।

[प्रतीहारी का प्रवेश।]

प्रतीहारी—महाराज की विजय हो। हर्ष से उत्फुल्ल नेत्र वाला यह विजयसेन दृढ़वर्मा के कंचुकी के साथ कुछ प्रिय निवेदन करने की इच्छा से द्वार पर उपस्थित है।

वासवदत्ता—(स्मित हास्य करती हुई) भगवति ! मेरा तर्क है कि मैं आर्यपुत्र के द्वारा सन्तुष्ट की गई।

सांकृत्यायनी—वत्सराज का पक्षपात करने वाली मैं कुछ भी न कहूँगी।

राजा—उन दोनों को शीघ्र प्रवेश कराओ।

प्रतीहारी—जी !

[प्रस्थान।]

[विजय सेन तथा कंचुकी का प्रवेश।]

विजयसेन—आज स्वामी के चरण देखने हैं। अतः मैं सचमुच किसी अनुपम सुखातिशय का अनुभव कर रहा हूँ।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कंचुकी—विजयसेन ! यह झूठ नहीं है। देखो।

सेवकगण अन्य (साधारण) समय में भी स्वामी को देखकर अत्यन्त सुखी होते हैं। फिर शत्रु के सैन्य के विनाश से स्वामी के आदिष्ट कार्य को पूर्ण किये हुये (सेवकगण) तो सुखी होते हैं ॥६॥

दोनों—(निकट जाकर) स्वामी की विजय हो।

[राजा दोनों को आलिंगन करता है।]

कंचुकी—देव ! बधाई है।

शत्रुओं का पराभव करने वाले विजयसेन ने आपके आदेश से दुष्ट कलिंग को मारकर हमारे स्वामी को राज्य (सिंहासन) पर बैठा दिया ॥७॥

वासवदत्ता—आर्य ! भगवति ! इस कंचुकी को जानती हो ?

सांकृत्यायनी—क्यों नहीं जानती हूँ ! यह वही है जिसके हाथ तुम्हारी मौसी ने पत्रिका भेजी थी।

राजा—साधु ! विजय सेन ने बड़ा काम किया।

राजा—देवि ! बधाई है। दृढ़वर्मा राज्य पर बैठ गये।

वासवदत्ता—(हर्ष से) अनुगृहीत हूँ।

विदूषक—इस प्रकार के अभ्युदय के समय इस राजकुल में यह करना चाहिये। (राजा को दिखाकर वीणावादन अभिनय करता हुआ) गुरु की पूजा (अपना यज्ञोपवीत दिखाता हुआ) ब्राह्मण का सत्कार। (आरण्यका को सूचित कर) बन्धन (कारागृह) से सब की मुक्ति।

राजा—(वासवदत्ता से छिपाकर विदूषक को चुटकी लेकर) साधु ! मित्र ! साधु।

विदूषक—रहो ! अब (भी) तुम कैसे यहाँ कुछ (सबके बंधन मोक्षादि लेकर) आदेश नहीं कर रहे हो ?

वासवदत्ता—(सांकृत्यायनी की ओर से देखकर स्मित हास्य करती हुई) हताश (विदूषक) ने आरण्यका को छुड़ा लिया।

सांकृत्यायनी—इस तपस्विनी (दीन) को कैद रखने से क्या लाभ ?

वासवदत्ता—जैसा भगवती को अच्छा लगे।

सांकृत्यायनी—यदि ऐसा है तो मैं ही जाकर उसे मुक्त करूँगी।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

[प्रस्थान ।]

कंचुकी—महाराज दृढ़वर्मा ने यह दूसरा संदेश भेजा है। "आपकी कृपा से हमारा सब अभीप्सित पूर्ण हो गया है। अतः (अब) ये प्राण आपके हैं इनको जैसा चाहें वैसा विनियोग करने में आप समर्थ हैं"।

[राजा लजाकर अधोमुख होता है।]

विजयसेन—देव ! दृढ़वर्मा की देव (आप) के प्रति विशेष प्रीति कहीं नहीं जा सकती।

कंचुकी—"यद्यपि तुम्हें समर्पित की हुई हमारी कन्या प्रियदर्शिका के खो जाने से मेरा सम्बन्ध नहीं हुआ, यह दुख था तथापि वासवदत्ता से परिणय करने वाले तुमने वह दूर ही कर दिया है।"

वासवदत्ता—(आँखों में आँसू भरकर) आर्य कंचुकी। क्या मेरी भगिनी खो गई ?

कंचुकी—राजपुत्री ! उस दुष्ट कलिंग के युद्ध में अन्तःपुर की स्त्रियाँ इधर उधर भाग जाने पर "अब यहाँ रुकना उचित नहीं यह सोचकर भाग्य से देखी गयी उसे (दृढ़वर्मा की कन्या को) लेकर मैं वत्सराज के निकट चल दिया। उसके अनन्तर (कुछ) सोचकर उसे विन्ध्य केतु के हाथ सौंपकर बाहर चला गया। जब तक लौट आता हूँ तब तक वह स्थान कुछ (अज्ञात) लोगों ने विन्ध्यकेतु के साथ स्मशान शेष कर दिया था।

राजा—(स्मित करता हुआ) विजयसेन ! क्या कहते हो ?

कंचुकी—वहाँ ढूढ़कर (भी) मैंने उसे नहीं पाया। तब से आज तक ज्ञान नहीं, (वह) कहाँ है।

[मनोरमा प्रवेश करती है।]

मनोरमा—महारानी। उस तपस्विनी के प्राण संशय में हैं।

वासवदत्ता—(आँखों में आँसू भरकर) क्या तुम प्रिय दर्शना के वृत्तान्त को जानती हो।

मनोरमा—मैं प्रियदर्शना का वृत्तान्त नहीं जानती। इसके मद्य के व्याज से लाया हुआ विष पीकर इसी आरण्यका के प्राण संशय में हैं, यही मैंने निवेदन किया है। महारानी बचाएं। (रोती हुई चरणों पर गिरती है।)

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वासवदत्ता—(स्वगत) हा धिक् ! हा धिक् ! आरण्यका के वृत्तान्त ने प्रियदर्शना के दुख को भी छिपा लिया। लोग अत्यन्त दुर्जन होते हैं। मुझे कुछ और ही (हत्यारिणी) समझेंगे। यहाँ यही उचित है। (प्रकट घबराकर) मनोरमे ! उसे शीघ्र यहीं ले आओ। नागलोक से विषविद्या सीखे हुए आयुपुत्र यहाँ कुशल हैं।

मनोरमा का प्रस्थान। उसके पश्चात् मनोरमा के द्वारा पकड़ी हुई तथा विष चढ़ने का अभिनय हुई आरण्यका का प्रवेश।

आरण्यका—ऐ मनोरमे ! क्यों तुम मुझे अंधकार में ले जा रही हो ?

मनोरमा—(खेद से) हा धिक् ! हा धिक् ! इसकी आँखें भी विष से आक्रान्त हो गयी। (वासवदत्ता की ओर देखकर) महारानी ! शीघ्र बचाओ। शीघ्र बचाओ। इसका विष अधिक फैल गया है।

वासवदत्ता—(घबराकर राजा को हाथ से) पकड़कर, आर्यपुत्र। उठो ! उठो ! यह तपस्विनी शीघ्र मर जायगी।

[सब देखते हैं।]

कंचुकी—(देखकर) यह मेरी राजपुत्री प्रियदर्शना के समान है। (वासवदत्ता को निर्देशकर) राजपुत्री ! यह कन्या कहाँ से आयी ?

वासवदत्ता—आर्य ! विन्ध्यकेतु की कन्या है। उसे (विन्ध्य केतु को) मारकर विजयसेन ले आया है।

कंचुकी—उसे कहाँ कन्या थी ? यह वही मेरी राजपुत्री है। हा ! मैं। अभागा मर गया। जमीन पर लोटकर (फिर उठकर) राज पुत्री ! यह वही प्रियदर्शिका तुम्हारी भगिनी है।

वासवदत्ता—आर्यपुत्र ! बचाओ ! बचाओ ! मेरी बहिन मर रही है।

राजा—सावधान ! सावधान ! मैं देखूँ तो। कष्ट है। कष्ट है।

कमल का भ्रमर गाढ़े पुष्प-मधु के रस से युक्त कली का आस्वादन करने गया। सहसा बर्फ के गिरने से वह जल गयी। भाग्य के टेढ़े होने पर अभीप्सित सिद्ध नहीं होते ॥८॥

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मनोरमे ! इससे पूछो क्या तुम्हें होश है ?

मनोरमा—सखि ! क्या तुम होश में हो। (आँखों में आँसू भरकर फिर हिलाती हुई) मैं कहती हूँ कि क्या तुम होश में हो ?

प्रियदर्शिका—(अस्पष्ट) यही है कि इस अवस्था को प्राप्त होकर भी मैंने महाराज को नहीं देखा। (इतना अर्द्ध वाक्य कहती हुई जमीन पर गिरती है।

राजा—(आँखों से आँसू भर कर)

यह इस नेत्रयुगल को बन्द कर रही है, (किन्तु) मुझे चारों ओर अंधकार दिखाई दे रहा है। इसका कण्ठ रुक रहा है किन्तु मेरी यह वाणी कठिन टीस बाहर निकाल रही है। इसके प्राण अपहरण किये गये हैं किन्तु मेरी शरीर निश्चेष्ट हो गई है। मैं समझता हूँ कि इसे विष का आवेग मात्र है, किन्तु उसका सब दुःख मुझे ही है ॥६॥

वासवदत्ता—(आँखों में आँसू भरकर) प्रियदर्शने ! उठो, उठो, देखो ! ये महाराज हैं। क्या इसकी वेदनाएँ भी नष्ट हो गईं ? मैंने अनजान में क्या अपराध किया है जो कुपित होकर तुम बोल नहीं रही हो। दया करो। दया करो। उठो, उठो। फिर मैं अपराध न करूँगी। (ऊपर देखकर) हा दुष्ट भाग्य। मैंने इस समय क्या (तुम्हारा) अपकार किया था जो (तुमने) इस दशा को प्राप्त हुई मेरी भगिनी को दिखाया। (प्रियदर्शिका के ऊपर गिरती है।)

विदूषक—मित्र ! क्यों तुम मूढ़ से होकर बैठे हो। यह विषाद का समय नहीं है। विष का प्रभाव अत्यन्त कठिन होता है। अपनी विद्या के प्रभाव को दिखाओ।

राजा—सच है। (प्रियदर्शिका को देखकर) मैं अब तक मूढ़ सा हो गया था। अब इसे जिलाऊँगा। जल, जल। (चाहिये)

विदूषक—(बाहर जाकर तथा पुनः प्रवेश कर) यह जल है।

(राजा निकट जाकर प्रियदर्शना पर हाथ रख कर मंत्रोच्चारण का अभिनय करता है। प्रियदर्शिका धीरे धीरे उठती है।)

वासवदत्ता—आर्यपुत्र ! सौभाग्य से मेरी भगिनी पुनः जीवित हो गई।

विजयसेन—अहो ! देवकी विद्या का प्रभाव (अनुपम) है।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कंचुकी—अहो ! महाराज की नरेन्द्रता मान्त्रिकता तथा राज्य प्रभाव सर्वत्र ही प्रभावी है।

प्रियदर्शिका—धीरे धीरे उठकर बैठती हुई। जम्हाई का अभिनय कर तथा विषाद-पूर्ण अस्पष्ट (बोलती हुई) मनोरमे ! मैं देर तक सोई।

विदूषक—मित्र ! तुम्हारा वैद्य होना सफल हो गया।

(प्रियदर्शिका राजा को सस्पृह तथा गौर से देखकर लजाती हुई अधोमुख होती है।)

वासवदत्ता—(हर्ष से) अब भी यह क्यों कुछ और ही सा कर रही है।

राजा—(स्मित करता हुआ)

आँखें स्थिर नहीं हो रही हैं, वाणी अत्यन्त स्पष्ट नहीं है। रोमांची से प्रकट होने वाले स्वेदकणों से युक्त इसकी शरीर शिथिल रही है। और स्तनभार के क्लेश से उत्पन्न यह कंप है। इससे (प्रतीत होता है कि) इसका अब भी सब विष शान्त नहीं हुआ है ॥१०॥

कंचुकी—राजपुत्री ! यह तुम्हारी पिता की आज्ञा पालन करने वाला (उपस्थित (है) चरणों पर गिरता है।)

प्रियदर्शिका—(देखकर) क्या कंचुकी आर्य विनयवसु हैं। (आँखों में आँसू भर कर) हा तात ! हा माता।

कंचुकी—राजपुत्री ! रोओ मत। तुम्हारे माता-पिता कुशल से हैं। वत्सराज के प्रभाव से राज्य भी उसी प्रकार है।

वासवदत्ता—(आँखों में आँसू भरकर) आओ ! असत्य आचरण करने वाली ! अब तो भगिनी का प्रेम दिखाओ। (गले लगाकर) अब मैं होश में आई।

विदूषक—तुम भगिनी को गले लगाकर ही सन्तुष्ट हो गई। किन्तु वैद्य का पुरस्कार भूल गई।

वासवदत्ता—वसन्तक ! भूली नहीं।

विदूषक—(राजा को निरखकर स्मित करता हुआ। वैद्य ! हाथ फैलाओ। मैं भगिनी (आरण्यका) का अग्रहस्त तुम्हें पुरस्कार स्वरूप दिलाऊँगा।

[राजा हाथ फैलाता है।]

Kendriya Vidyalaya Sangathan's Sri Sankaracharya Marg
958
Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

[वासवदत्ता प्रियदर्शिका का हाथ सौंपती है।]

राजा—(हाथ खींचकर) इससे क्या होगा।

DATE DUE

Class No. 822 Book No. _____

Accession No. 707

This book should be returned to the Library on the date last stamped. A fine of 0.6 nP. will be charged for each day the book is kept over time.

मुद्रक—का पब्लिशिङ्ग हाउस, एम० एल० खरकन्दा, इलाहाबाद।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

हिन्दी साहित्य सम्मेलन द्वारा प्रकाशित कुछ पुस्तकें

१ काव्य कलानिधि ३॥)
२ भारत-गीत =)
३ राष्ट्रभाषा ॥)
४ मैथिली लोकगीत ४)
५ पद्मावत पूर्वार्द्ध १), १।)
६ खा का हृदय १॥)
७ नवीन पद्यसंग्रह १।)
८ बिहारी-संग्रह =)
९ सती कल्याणकी ॥)
१० हिन्दी
११ ग्राम
१२ सम
१३ अ
१४ रस
१५ देव
१६ सर
१७ ग्रा
१८ सू

१ गो
२ म
३ भो
४ रा
५ सा
६ का
७ कै
८ भो
९ अ
१० हि
११ व

१ चित्ररेखा २)
२ बाल नाटक-माला ।)
३ बाल-कथा भाग २ ।=)
४ बाल विभूति =)
५ वीर पुत्रियाँ ।=)
६ तुलसी दर्शन ५)
७ सरल नागरिक शास्त्र ४)
८ कृषि प्रवेशिका १।)
९ विकास (नाटक) ॥=)

४)
१।=)
१)
३)
, १॥)
१॥)
२॥)
॥)
॥)

३)
४)
६)
१॥)
६)
६)
१०)
५)
१॥)
२)
॥) १॥)

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मत्स्य महापुराण

अनुवादक : रामप्रताप त्रिपाठी, शास्त्री

वेदों के बाद पुराण हमारी संस्कृति के गौरव प्रतीक हैं। उनमें ऐसे रत्न छिपे हुए हैं, जिनकी उपेक्षा पाश्चात्य विद्वानों से भी करते नहीं बन पड़ी। पुराणों में वर्णित भारतीय समाज की सब से पुरानी कहानियों की महत्ता इसलिये भी अतुलनीय है कि वह मनोरंजक होने के साथ-साथ जीवनदायिनी अनुभूतियों से ओतप्रोत, सरल, आडम्बर हीन, सुरुचिपूर्ण और उपदेशप्रद हैं। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उनकी उपयोगिता आज भी अक्षुण्ण बनी हुई है।

मत्स्य महापुराण की प्रशंसा ऐतिहासिक विद्वानों ने भी इसलिए की है कि अन्य पुराणों की भांति इसमें किसी सम्प्रदाय विशेष की प्रशंसा और अन्य की निन्दा नहीं की गई है और न किसी विशेष सम्प्रदाय के हाथ में पड़ कर यह प्रचार का साधन ही बना है। इसमें मूर्ति कला, चित्र कला, राजनीति, कूटनीति, वास्तु विज्ञान, आयुर्विज्ञान, ज्योतिष आदि कला एवं वैज्ञानिक विषयों का भी सन्निवेश है। अनुवाद प्रामाणिक और प्रवाहपूर्ण है। साधारण पढ़े लिखे लोग भी इस से मूल ग्रन्थ का आनन्द उठा सकते हैं। पुस्तक प्रायः ८०० डबल क्राउन अठपेजी साइज में समाप्त हुई है। मूल्य २०)

जातक

[प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय खण्ड]

अनुवादक : भदन्त आनन्द कौसल्यायन

इतिहास के प्रसिद्ध विद्वान् पं० जयचन्द्र विद्यालंकार का कथन है कि "विश्व के वाङ्मय में 'जातक' जन-साधारण की सब से पुरानी कहानियाँ हैं; मनोरंजकता, सुरुचि, सरलता, आडम्बरहीन सौन्दर्य और शिक्षाप्रद होने में उनका मुकाबिला नहीं हो सकता। ये बच्चों के लिये सरल और आकर्षक, जवानों और बूढ़ों के लिये भी रुचिकर और विद्वानों के लिये प्राचीन भारत के जीवन का जीता-जागता चित्रण करने के कारण अत्यन्त मूल्यवान हैं।"

प्रथम खंड, पृष्ठ संख्या ५४०, डिमाई साइज; सजिल्द मूल्य ७॥)
द्वितीय खंड, पृष्ठ संख्या ४६४, डिमाई साइज; सजिल्द मूल्य ७॥)
तृतीय खंड, पृष्ठ संख्या ४४८, डिमाई साइज; सुन्दर जिल्द मूल्य १०)

Funding by IKS-MoE